CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानदिवाकर, मर्यादा शिष्योत्तम, प्रशांतमूर्ति
आचार्यश्री भरतसागर जी महाराज की स्वर्णजयंती वर्ष के उपलक्ष में :

श्री माणिक्यनन्दि स्वामी विरचित

परीक्षामुख

सम्पादक
पंडित मोहनलाल शास्त्री
पंडित मोहनलाल शास्त्री
सम्पादक

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामचन्द्र जैन शास्त्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२

सोमचन्द्र जैन शास्त्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञानदिवाकर, मर्यादा शिष्योत्तम, प्रशांतमूर्ति
आचार्यश्री भरतसागर जी महाराज की स्वर्णजयंती वर्ष के उपलक्ष में :

श्रीमाणिक्यनन्दि स्वामि विरचित

परीक्षामुख

सम्पादक
पं० मोहनलाल शास्त्री, जबलपुर

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भारतवर्षीय अनेकान्त विद्वत् परिषद् पुष्प संख्या – १३
आचार्यश्री भरतसागर जी महाराज की स्वर्णजयंती पुष्प संख्या – १४

आशीर्वाद : आचार्यश्री भरतसागर जी महाराज

स्वर्णजयंती वर्ष निर्देशन : आर्यिका स्याद्वादमती माता जी

ग्रन्थ : **परीक्षामुख**

प्रणेता : **श्री माणिक्यनन्दि स्वामी**

अनुवादक : पं० मोहनलाल शास्त्री

सर्वाधिकार सुरक्षित : भा० अ० वि० परि०

संस्करण : द्वितीय
वीर नि० सं० २५२४ सन् १९९८

पुस्तक प्राप्ति–स्थान : आचार्य श्री भरतसागर जी महाराज संघ

मूल्य : २०.०० रुपये

मुद्रक : वर्द्धमान मुद्रणालय
जवाहरनगर कालोनी, वाराणसी-१०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

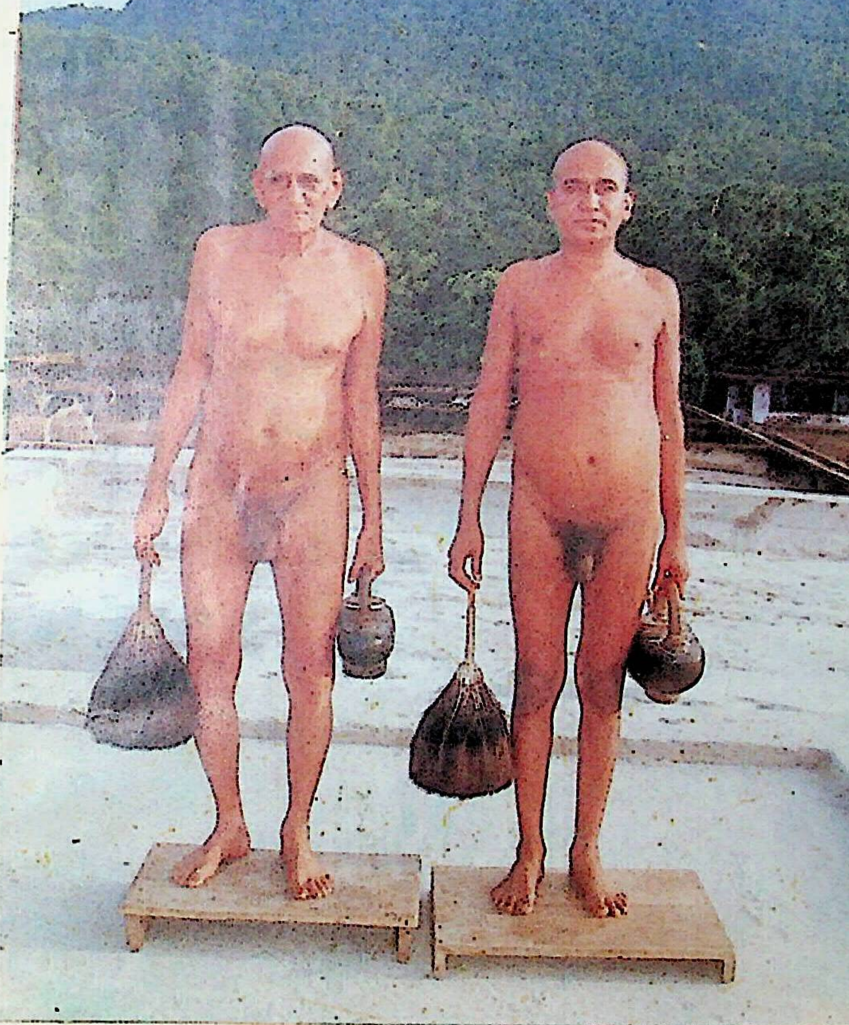

आचार्य श्री विमल सागर जी

तुभ्यं नमः परम धर्म प्रभावकाय,
तुभ्यं नमः परम तीर्थ सुवन्दकाय।
'स्याद्वाद' सूक्ति सरणि प्रतिबोधकाय,
तुभ्यं नमः विमल सिन्धु गुणार्णवाय ॥

आचार्य श्री भरत सागर जी

आचार्यश्री भरतसिन्धु नमोस्तु तुभ्यं,
हे भक्तिप्राप्त गुरुवर्य्य नमोस्तु तुभ्यं।
हे कीर्तिप्राप्त जगदीश नमोस्तु तुभ्यं,
भव्याब्ज सूर्य गुरुवर्य्य नमोस्तु तुभ्यं ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समर्पण

प. पू. वात्सल्य रत्नाकर आचार्य श्री
१०८ विमलसागर जी महाराज के
पट्ट शिष्य
मर्यादा-शिष्योत्तम
ज्ञान-दिवाकर
प्रशान्त-मूर्ति
वाणीभूषण
भुवनभास्कर
गुरुदेव आचार्य श्री १०८ भरतसागर जी महाराज
की स्वर्ण जयन्ती के उपलक्ष में
आपके श्री कर–कमलों में ग्रन्थराज
सादर–समर्पित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आद्य—निवेदन

न्यायविषय में आचार्यों ने तत्त्वपरीक्षा के लिये प्रमाणरूपी कसौटी तैयार की है। यदि इस प्रमाण से जाँचकर पदार्थों का निर्णय किया जाय तो दावे के साथ कहा जा सकता है कि कोई भी व्यक्ति मतमतान्तरों की चकाचौंध में भ्रान्त नहीं हो सकता। जैसे तराजू से तुले पदार्थ में या कसौटी पर घिसकर जाँचे हुये सुवर्ण में कोई सन्देह नहीं रहता, वैसे ही प्रमाण द्वारा निर्णीत पदार्थ में भी सन्देह नहीं रहता।

मोक्षमार्ग की प्राप्ति के लिये जीवादिक तत्त्वों का निर्णय होना आवश्यक है और वह प्रमाण के बिना हो नहीं सकता। इसलिये प्रमाण का स्वरूपादि जानना प्रत्येक आत्महितैषी के लिये आवश्यक है।

जैन सिद्धान्त में प्रमाण के स्वरूप के निरूपक अनेक ग्रन्थ हैं परन्तु वे संस्कृत या प्राकृत में हैं। उनसे सर्वसाधारण को प्रमाण का बोध होना दुःसाध्य अनुभव कर भाषा के जानकार भी प्रमाण के स्वरूपादि का बोध कर सकें इस हेतु इस ग्रन्थ की यह 'भाषाटीका' बनाई गई है। गवर्नमैंट संस्कृत कालेज कलकत्ता की प्राथमिक परीक्षा और संस्कृत विशारद प्रथम खण्ड के छात्रों को विशेष लाभ हो एतदर्थ संस्कृत की सुबोध टीका भी दे दी गई है। विशेषार्थ, टिप्पणी, लेखमाला, ग्रन्थकार की जीवनी, सूत्रसूची और परीक्षाओं के प्रश्नपत्र भी सम्बद्ध कर इस ग्रन्थ को सर्वाङ्ग सुन्दर और सर्वोपयोगी बनाने का प्रयास किया गया है। इसमें मुझे कहाँ तक सफलता मिली है इसका निर्णय पाठकों के हाथ है।

संस्कृत टीका में यत्र तत्र असन्धि प्रयोग सरलता के हेतु ज्ञात रहते हुये ही किया गया है। फिर भी न्याय का विषय विशेष गहन है। उसमें हमारा स्खलित हो जाना अस्वाभाविक नहीं है। परन्तु पाठकों से विनय है कि इसकी सूचना हमें देने की कृपा अवश्य करें, जिससे तृतीयावृत्ति में सुधार हो सके।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य श्री माणिक्यनन्दी

आचार्य माणिक्यनन्दी नन्दिसंघ के प्रमुख आचार्य थे। धारानगरी उनकी निवासस्थली रही है। ऐसा प्रमेयरत्नमाला की टिप्पणी पृ. १ से प्रमाणित होता है।

ये न्यायशास्त्र के महापण्डित थे। इनका परीक्षामुख ग्रन्थ जैनन्याय-शास्त्र का आद्य न्यायसूत्र है। शिमोगा जिले के नगर ताल्लुके के शिलालेख नं. 64 के एक पद्य में माणिक्यनन्दी को 'जिनराज' लिखा है। न्यायदीपिका पुस्तिका में इन्हें 'भगवान्' के रूप में उल्लेख किया गया है। 'प्रमेयकमल मार्तण्ड' में प्रभाचन्द्र ने इनका गुरु के रूप में स्मरण किया है। वस्तुतः माणिक्यनन्दी अतिशय प्रतिभाशाली और विभिन्न दर्शनों के ज्ञाता थे। ये अङ्गों के ज्ञाता और अनेक सद्गुणों के निवास थे।

'सुदंसण चरिउ' के कर्त्ता नयनन्दी (वि. सं. ११००) के उल्लेखानुसार माणिक्यनन्दी के गुरु का नाम रामनन्दी है। स्वयं नयनन्दी माणिक्यनन्दी के शिष्य थे।

माणिक्यनन्दी अकलङ्क के उत्तरवर्ती हैं और अकलङ्क का समय ई. सन् ७२०–७८० माना गया है। अतएव माणिक्यनन्दी के समय की पूर्वावधि ई. सन् ८०० निर्बाध मानी जा सकती है।

श्री डा. दरबारीलाल कोठिया ने अनेक प्रमाणों से सिद्ध किया है कि माणिक्यनन्दी प्रभाचन्द्र के साक्षात् गुरु थे। अतः माणिक्यनन्दी उनसे कुछ पूर्ववर्ती ई १०२८ के लगभग के हैं।

माणिक्यनन्दी का एकमात्र ग्रन्थ 'परीक्षामुख' ही मिलता है। इस ग्रन्थ का नाम-करण बौद्धदर्शन के हेतुमुख, न्यायमुख जैसे ग्रन्थों के अनुकरण पर मुखान्त नाम पर किया गया है।

परीक्षामुख पर आचार्य प्रभाचन्द्र ने प्रमेयकमलमार्तण्ड, आचार्य अनन्तवीर्य ने प्रमेयरत्नमाला, भट्टारक चारुकीर्ति ने प्रमेयरत्नमालालङ्कार एवं शान्तिवर्णी ने प्रमेयकण्ठिका आदि टीकाएँ लिखी हैं।

—मोहनलाल शास्त्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परीक्षामुखसूत्रसूची

प्रमाणादर्थसंसिद्धि-स्तदाभासाद्विपर्ययः ।
इति वक्ष्ये तयोर्लक्ष्म, सिद्धमल्पं लघीयसः ॥१॥

अथ प्रथमः समुद्देशः

सूत्र	पृष्ठ
१ स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम्	२२
२ हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्	२३
३ तन्निश्चयात्मकं समारोपविरुद्धत्वादनुमानवत्	२४
४ अनिश्चितोऽपूर्वार्थः	२५
५ दृष्टोऽपि समारोपात्तादृक्	२५
६ स्वोन्मुखतया प्रतिभासनं स्वस्य व्यवसायः	२६
७ अर्थस्येव तदुन्मुखतया	२६
८ घटमहमात्मना वेद्मि	२६
९ कर्मवत् कर्तृकरणक्रियाप्रतीतेः	२७
१० शब्दानुच्चारणेऽपि स्वस्यानुभवनमर्थवत्	२८
११ को वा तत्प्रतिभासिनमर्थमध्यक्षमिच्छंस्तदेव तथा नेच्छेत्	२९
१२ प्रदीपवत्	२९
१३ तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च	३०

अथ द्वितीयः समुद्देशः

सूत्र	पृष्ठ
१ तद्द्वेधा, २ प्रत्यक्षेतरभेदात्	३२
३ विशदं प्रत्यक्षम्	३२
४ प्रतीत्यन्तराव्यवधानेन विशेषवत्तया वा प्रतिभासनं वैशद्यम्	३३
५ इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं देशतः साम्व्यवहारिकम्	३४
६ नार्थालोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात्तमोवत्	३५
७ तदन्वयव्यतिरेकानुविधानाभावात् केशोण्डुकज्ञानवन्नक्तंचरज्ञानवच्च	३६
८ अतज्जन्यमपि तत्प्रकाशकं प्रदीपवत्	३७
९ स्वावरणक्षयोपशमलक्षणयोग्यतया हि प्रतिनियतमर्थं व्यवस्थापयति	३७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१० कारणस्य च परिच्छेद्यत्वे करणादिना व्यभिचारः ३८
११ सामग्रीविशेषविश्लेषिताखिलावरणमतीन्द्रियमशेषतो मुख्यम् ३९
१२ सावरणत्वे करणजन्यत्वे च प्रतिबन्धसम्भवात् ४०

अथ तृतीयः समुद्देशः

१ परोक्षमितरत् ४१
२ प्रत्यक्षादिनिमित्तं स्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानागमभेदम् ४१
३ संस्कारोद्बोधनिबन्धना तदित्याकारा स्मृतिः, ४ स देवदत्तो यथा ४२
५ दर्शनस्मरणकारणकं सङ्कलनं प्रत्यभिज्ञानं तदेवेदं, तत्सदृशं, तद्विलक्षणं तत्प्रतियोगीत्यादि ४३
६ यथा स एवायं देवदत्तः, गोसदृशो गवयः, गोविलक्षणो महिषः इदमस्माद्दूरम् वृक्षोयमित्यादि, ४४
७ उपलम्भानुपलम्भनिमित्तं व्याप्तिज्ञानमूहः, ४५
८ इदमस्मिन्सत्येव भवत्यसति तु न भवत्येवेति च, ४५
९ यथाग्नावेव धूमस्तदभावे न भवत्येवेति च ४५
१० साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानम् ४६
११ साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुः ४६
१२ सहक्रमभावनियमोऽविनाभावः ४६
१३ सहचारिणो र्व्याप्यव्यापकयोश्च सहभावः ४७
१४ पूर्वोत्तरचारिणोः कार्यकारणयोश्च क्रमभावः ४७
१५ तर्कात्तन्निर्णयः ४८
१६ इष्टमबाधितमसिद्धं साध्यम् ४८
१७ संदिग्धविपर्यस्ताव्युत्पन्नानां साध्यत्वं यथा स्यादित्यसिद्धपदम् ४९
१८ अनिष्टाध्यक्षादिबाधितयोः साध्यत्वं मा भूदितीष्टाबाधितवचनम् ४९
१९ न चासिद्धवदिष्टं प्रतिवादिनः ५०
२० प्रत्यायनाय हीच्छा वक्तुरेव ५०
२१ साध्यं धर्मः, क्वचित्तद्विशिष्टो वा धर्मी ५१
२२ पक्ष इति यावत्, २३ प्रसिद्धो धर्मी ५१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२४ विकल्पसिद्धे तस्मिन्सत्तेतरे साध्ये ५२
२५ अस्ति सर्वज्ञो, नास्ति खरविषाणम् ५२
२६ प्रमाणोभयसिद्धे तु साध्यधर्मविशिष्टता ५२
२७ अग्निमानयं देशः, परिणामी शब्द इति यथा ५३
२८ व्याप्तौ तु साध्यं धर्म एव, २९ अन्यथा तदघटनात् ५३
३० साध्यधर्माधारसंदेहापनोदाय गम्यमानस्यापि पक्षस्य वचनम् ५४
३१ साध्यधर्मिणि साधनधर्मावबोधनाय पक्षधर्मोपसंहारवत् ५४
३२ को वा त्रिधा हेतुमुक्त्वा समर्थयमानो न पक्षयति ५५
३३ एतद्द्वयमेवानुमानाङ्गं, नोदाहरणम् ५६
३४ न हि तत्साध्यप्रतिपत्त्यङ्गं तत्र यथोक्तहेतोरेव व्यापारात् ५६
३५ तदविनाभावनिश्चयार्थं वा विपक्षे बाधकादेव तत्सिद्धेः ५७
३६ व्यक्तिरूपं च निदर्शनं सामान्येन तु व्याप्तिस्तत्रापि तद्विप्रतिपत्तावनवस्थानं स्यात् दृष्टान्तान्तरापेक्षणात् ५८
३७ नापि व्याप्तिस्मरणार्थं तथाविधहेतुप्रयोगादेव तत्स्मृतेः ५९
३८ तत्परमभिधीयमानं साध्यधर्मिणि साध्यसाधने सन्देहयति ५९
३९ कुतोऽन्यथोपनयनिगमने ६०
४० न च ते तदङ्गे साध्यधर्मिणि हेतुसाध्ययोर्वचनादेवासंशयात् ६०
४१ समर्थनं वा वरं हेतुरूपमनुमानावयवो वास्तु साध्ये तदुपयोगात् ६०
४२ बालव्युत्पत्त्यर्थं तत्त्रयोपगमे शास्त्र एवासौ न वादेऽनुपयोगात् ६१
४३ दृष्टान्तो द्वेधा ऽन्वयव्यतिरेकभेदात् ६१
४४ साध्यव्याप्तं साधनं यत्र प्रदर्श्यते सोऽन्वयदृष्टान्तः ६२
४५ साध्याभावे साधनाभावो यत्र कथ्यते स व्यतिरेकदृष्टान्तः ६२
४६ हेतोरुपसंहार उपनयः ६२
४७ प्रतिज्ञायास्तु निगमनम् ६३
४८ तदनुमानं द्वेधा, ४९ स्वार्थपरार्थभेदात् ६३
५० स्वार्थमुक्तलक्षणम् ६३
५१ परार्थं तु तदर्थपरामर्शिवचनाज्जातम् ६४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५२	तद्वचनमपि तद्धेतुत्वात्	६४
५३	स हेतु र्द्वेधोपलब्ध्यनुपलब्धिभेदात्	६५
५४	उपलब्धि विधिप्रतिषेधयोरनुपलब्धिश्च	६५
५५	अविरुद्धोपलब्धि विधौ षोढा व्याप्यकार्यकारणपूर्वोत्तरसहचरभेदात्	६६
५६	रसादेकसामग्र्यनुमानेन रूपानुमानमिच्छद्भिरिष्टमेव किंचित्कारणं हेतु यंत्र सामर्थ्याप्रतिबंधकारणान्तरावैकल्ये	६६
५७	न च पूर्वोत्तरचारिणोस्तादात्म्यं तदुत्पत्ति र्वा कालव्यवधाने तदनुपलब्धेः	६७
५८	भाव्यतीतयो र्मरणजागृद्बोधयोरपि नारिष्टोद्बोधौ प्रति हेतुत्वम्	६८
५९	तद्व्यापाराश्रितं हि तद्भावभावित्वम्	६९
६०	सहचारिणोरपि परस्परपरिहारेणावस्थानात् सहोत्पादाच्च	६९
६१	परिणामी शब्दः कृतकत्वात्, य एवं स एवं दृष्टो, यथा घटः, कृतकश्चायं, तस्मात्परिणामीति यस्तु न परिणामी स न कृतको दृष्टो, यथा वन्ध्यास्तनंधयः, कृतकश्चायं, तस्मात् परिणामी	७०
६२	अस्त्यत्र देहिनि बुद्धि र्व्याहारादेः	७१
६३	अस्त्यत्र छाया छत्रात्	७२
६४	उदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयात्	७२
६५	उद्गाद्भरणिः प्राक्तत एव, ६६ अस्त्यत्र मातुलिंगे रूपं रसात्	७२
६७	विरुद्धतदुपलब्धिः प्रतिषेधे तथा	७३
६८	नास्त्यत्र शीतस्पर्शः औष्ण्यात्	७४
६९	नास्त्यत्र शीतस्पर्शो धूमात्	७४
७०	नास्मिन् शरीरिणि सुखमस्ति हृदयशल्यात्	७५
७१	नोदेष्यति मुहूर्तान्ते शकटं रेवत्युदयात्	७५
७२	नोदगाद्भरणि र्मुहूर्तात्पूर्वं पुष्योदयात्	७५
७३	नास्त्यत्र भित्तौ परभागाभावोऽर्वाग्भागदर्शनात्	७६
७४	अविरुद्धानुपलब्धिः प्रतिषेधे सप्तधा स्वभावव्यापककार्यकारणपूर्वोत्तरसहचरानुपलम्भभेदात्	७६
७५	नास्त्यत्र भूतले घटोऽनुपलब्धेः, ७६ नास्त्यत्र शिंशपा वृक्षानुपलब्धेः	७७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

७७ नास्त्यत्राप्रतिबद्धसामर्थ्योऽग्नि धूमानुपलब्धेः,७८नास्त्यत्र धूमोऽनग्नेः ७८
७९ न भविष्यति मुहूर्त्तान्ते शकटं कृत्तिकोदयानुपलब्धेः ७९
८० नोदगाद्भरणिः मुहूर्तात् प्राक्तत एव
८१ नास्त्यत्र समतुलायामुन्नामो नामानुपलब्धेः ७९
८२ विरुद्धानुपलब्धिर्विधौत्रेधा विरुद्धकार्यकारणस्वभावानुपलब्धिभेदात् ८०
८३ यथास्मिन् प्राणिनि व्याधिविशेषोऽस्ति निरामयचेष्टानुलब्धेः ८०
८४ अस्त्यत्र देहिनि दुःखमिष्टसंयोगाभावात् ८१
८५ अनेकान्तात्मकं वस्त्वेकान्तस्वरूपानुपलब्धेः ८१
८६ परम्परया सम्भवत्साधनमत्रैवान्तर्भावनीयम् ८१
८७ अभूदत्र चक्रे शिवकः स्थासात् ८२
८८ कार्यकार्यमविरुद्धकार्योपलब्धौ ८२
८९ नास्त्यत्र गुहायां मृगक्रीडनं मृगारिसंशब्दनात् कारणविरुद्धकार्यं विरुद्धकार्योपलब्धो यथा ८२
९० व्युत्पन्नप्रयोगस्तु तथोपपत्त्यान्यथानुपपत्त्यैव वा ८३
९१ अग्निमानयं देशस्तथैव धूमवत्त्वोपपत्ते धू'मवत्त्वान्यथानुपत्ते र्वा ८३
९२ हेतुप्रयोगो हि यथा व्याप्तिग्रहणं विधीयते सा च तावन्मात्रेण व्युत्पन्नैरवधार्यते ८४
९३ तावता च साध्यसिद्धिः, ९४ तेन पक्षस्तदाधारसूचनायोक्तः ८४
९५ आप्तवाक्यादिनिबन्धनमर्थज्ञानमागमः ८५
९६ सहजयोग्यतासंकेतवशाद्धि शब्दादयो वस्तुप्रतिपत्तिहेतवः ८६
९७ यथा मेर्वादयः सन्ति । ८६

अथ चतुर्थः समुद्देशः

१ सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषयः ८७
२ अनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्ययगोचरत्वात् पूर्वोत्तराकारपरिहारावाप्ति स्थिति लक्षणपरिणामेनार्थक्रियोपपत्तेश्च ८७
३ सामान्यं द्वेधा तिर्यगूर्ध्वताभेदात् ८९
४ सदृशपरिणामस्तिर्यक् खण्डमुण्डादिषु गोत्ववत् ८९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

५ परापरविवर्तव्यापि द्रव्यमूर्द्धतासामान्यं, मृदिव स्थासादिषु ९०
६ विशेषश्च, ७ पर्यायव्यतिरेकभेदात् ९१
८ एकस्मिन्द्रव्ये क्रमभाविनः परिणामाः पर्याया आत्मनि हर्ष — विषादादिवत् ९२
९ अर्थान्तरगतो विसदृशपरिणामो व्यतिरेको गोमहिषादिवत् ९२

अथ पंचमः समुद्देशः

१ अज्ञाननिवृत्ति हानोपादानोपेक्षाश्च फलम्, २ प्रमाणादभिन्नं भिन्नं च ९२
३ यः प्रमिमीते स एव निवृत्ताज्ञानो जहात्यादत्ते उपेक्षते चेति प्रतीतेः ९२

अथ षष्ठः समुद्देशः

१ ततोऽन्यत्तदाभासम् ९३
२ अस्वसंविदितगृहीतार्थदर्शनसंशयादयः प्रमाणाभासाः ९३
३ स्वविषयोपदर्शकत्वाभावात् ९३
४ पुरुषान्तरपूर्वार्थं गच्छत्तृणस्पर्शस्थाणुपुरुषादिज्ञानवत् ९३
५ चक्षूरसयो र्द्रव्ये संयुक्तसमवायवच्च ९४
६ अवैशद्ये प्रत्यक्षं तदाभासम् बौद्धस्याकस्माद्धूमदर्शनाद्वह्निविज्ञानवत् ९५
७ वैशद्येऽपि परोक्षं तदाभासं, मीमांसकस्य करणज्ञानवत् ९५
८ अतस्मिंस्तदिति ज्ञानं स्मरणाभासं, स जिनदत्ते देवदत्तो यथा ९५
९ सदृशे तदेवेदं, तस्मिन्नेव तेन सदृशं, यमलकवदित्यादि प्रत्यभिज्ञानाभासम् ९५
१० असंबद्धे तज्ज्ञानम् तर्काभासम्, ९६
११ इदमनुमानाभासम् ९६
१२ तत्रानिष्टादिः पक्षाभासः ९७
१३ अनिष्टो मीमांसकस्यानित्यः शब्दः ९७
१४ सिद्धः श्रावणः शब्दः ९७
१५ बाधितः प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनैः ९७
१६ तत्र प्रत्यक्षबाधितो यथा अनुष्णोऽग्निर्द्रव्यत्वाज्जलवत् ९८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१७ अपरिणामी शब्दः कृतकत्वाद् घटवत्	९८
१८ प्रेत्याऽसुखप्रदो धर्मः पुरुषाश्रितत्वादधर्मवत्	९८
१९ शुचि नरशिरः कपालं प्राण्यङ्गत्वाच्छंखशुक्तिवत्	९९
२० माता मे वन्ध्या पुरुषसंयोगेऽप्यगर्भत्वात् प्रसिद्धवन्ध्यावत्	९९
२१ हेत्वाभासा असिद्धविरुद्धानैकान्तिकाकिंचित्कराः	१००
२२ असत्सत्तानिश्चयोऽसिद्धः	
२३ अविद्यमानसत्ताकः परिणामी शब्द चाक्षुषत्वात्	१००
२४ स्वरूपेणासत्वात्	१०१
२५ अविद्यमाननिश्चयो मुग्धबुद्धि प्रत्यग्निरत्र धूमात्	१०१
२६ तस्य बाष्पादिभावेन भूतसंघाते सन्देहात्	१०१
२७ सांख्यं प्रति परिणामी शब्दः कृतकत्वात्, २८ तेनाज्ञातत्वात्	१०२
२९ विपरीतनिश्चिताविनाभावो विरुद्धोऽपरिणामी शब्दः कृतकत्वात्	१०३
३० विपक्षेऽप्यविरुद्धवृत्तिरनैकान्तिकः	१०३
३१ निश्चितवृत्तिरनित्यः शब्दः प्रमेयत्वाद् घटवत्	१०४
३२ आकाशे नित्येऽप्यस्य निश्चयात्	१०४
३३ शंकितवृत्तिस्तु नास्ति सर्वज्ञो वक्तृत्वात्	१०४
३४ सर्वज्ञत्वेन वक्तृत्वाविरोधात्	१०५
३५ सिद्धे प्रत्यक्षादिबाधिते च साध्ये हेतुरकिंचित्करः	१०५
३६ सिद्धः श्रावणः शब्दः शब्दत्वात्, ३७ किञ्चिदकरणात्	१०६
३८ यथानुष्णोऽग्निर्द्रव्यत्वादित्यादौ किञ्चित्कर्तुमशक्यत्वात्	१०६
३९ लक्षण एवासौ दोषो व्युत्पन्नप्रयोगस्य पक्षदोषेणैव दुष्टत्वात्	१०६
४० दृष्टान्ताभासा अन्वयेऽसिद्धसाध्यसाधनोभयाः	१०७
४१ अपौरुषेयः शब्दोऽमूर्तत्वादिन्द्रियसुखपरमाणुघटवत्	१०७
४२ विपरीतान्वयश्च यदपौरुषेयं तदमूर्तम्	१०८
४३ विद्युदादिनातिप्रसंगात्	१०८
४४ व्यतिरेकेऽसिद्धतद्व्यतिरेकाः परमाण्विन्द्रियसुखाकाशवत्	१०९
४५ विपरीतव्यतिरेकश्च यन्नामूर्तं तन्नापौरुषेयम्	११०
४६ बालप्रयोगाभासाः पञ्चावयवेषु कियद्धीनता	१११
४७ अग्निमानयं प्रदेशो धूमवत्त्वाद्यदित्थं तदित्थं यथा महानसः	१११

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

४८ धूमावांश्चायम् १११
४९ तस्मादग्निमान् धूमवांश्चायम् ११२
५० स्पष्टतया प्रकृतप्रतिपत्तेरयोगात् ११२
५१ रागद्वेषमोहाक्रान्तपुरुषवचनाज्जातमागमाभासम् ११२
५२ यथा नद्यास्तीरे मोदकराशयः सन्ति, धावध्वं माणवकाः ११३
५३ अङ्गुल्यग्रे हस्तियूथशतमास्ते इति च ११३
५४ विसम्वादात् ११३
५५ प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणमित्यादि संख्याभासम् ११४
५६ लोकायतिकस्य प्रत्यक्षतःपरलोकादिनिषेधस्य परबुद्ध्यादेश्चासिद्धेः ११४
५७ सौगतसांख्ययौगप्रभाकर जैमिनीयानां प्रत्यक्षानुमानागमोपमानार्थापत्यभावैरेकैकाधिकै र्व्याप्तिवत् ११५
५८ अनुमानादेरतद्विषयत्वे प्रमाणान्तरत्वम् ११५
५९ तर्कस्येव व्याप्तिगोचरत्वे प्रमाणस्याव्यवस्थापकत्वात् ११५
६० प्रतिभासभेदस्य च भेदकत्वात् ११६
६१ विषयाभासः सामान्यं विशेषो द्वयं वा स्वतन्त्रम् ११७
६२ तथा प्रतिभासत्वात् कार्याकरणाच्च ११७
६३ समर्थस्य करणे सर्वदोत्पत्तिरनपेक्षत्वात् ११८
६४ परापेक्षणे परिणामित्वमन्यथा तदभावात् ११८
६५ स्वयमसमर्थस्याकारकत्वात्पूर्ववत् ११८
६६ फलाभासः प्रमाणादभिन्नं भिन्नमेव वा ११९
६७ अभेदे तद्व्यवहारानुपपत्तेः ११९
६८ व्यावृत्त्यापि न तत्कल्पना फलान्तराद् व्यावृत्त्याऽफलत्वप्रसंगात् ११९
६९ प्रमाणान्तराद् व्यावृत्त्येवाप्रमाणत्वमस्य १२०
७० तस्माद्वास्तवो भेदः १२०
७१ भेदे त्वात्मान्तरवत्तदनुपपत्तेः १२०
७२ समवाये ऽतिप्रसंगः १२१
७३ प्रमाणतदाभासौ दुष्टतयोद्भावितौ परिहृतापरिहृतदोषौ वादिनः साधनतदाभासौ प्रतिवादिनो दूषणभूषणे च १२२
७४ सम्भवदन्यद्विचारणीयम् १२२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषयानुक्रमणिका

—०—

आद्य निवेदन	२	कलकत्ता परीक्षा का प्रश्नपत्र	६
ग्रन्थकार का परिचय	३, ४	परीक्षामुखसूत्रसूची	७
परीक्षामुख का प्रश्नपत्र	५	विषय सूची	१५

अथ प्रथमः परिच्छेदः

ग्रन्थकार की प्रतिज्ञा	२१	पदार्थ को जानने के समय होने वाली प्रतीति	२६
प्रमाण का लक्षण	२२	केवल परव्यवसाय का खण्डन	२७
प्रमाण का लक्षणान्तर	२३	शब्दोच्चारण बिना ही स्वव्यवसाय का स्पष्टीकरण	२८
प्रमाण का निश्चायकपना	२४	शब्दोच्चारण बिना स्वप्रतीति	२९
अपूर्वार्थ का लक्षण	२५	स्व की प्रतीति का उदाहरण	२९
अपूर्वार्थ का दूसरा लक्षण	२५	प्रमाण के प्रामाण्य का निर्णय	३०
स्वव्यवसाय का समर्थन	२६		
स्वव्यवसाय का दृष्टान्त	२६		

अथ द्वितीयः परिच्छेदः

प्रमाण के भेद	३२	पदार्थ और प्रकाश के ज्ञान की कारणताके निषेधमें युक्ति	३५
प्रमाणके दो भेदोंका स्पष्टीकरण	३२	ज्ञान के अर्थजन्यता और अर्थाकारता का खण्डन	३७
प्रत्यक्षप्रमाण का लक्षण	३२	अतज्जन्य और अतदाकार होने पर भी प्रतिनियतार्थ जानने का कारण	३७
वैशद्य का लक्षण	३३		
सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष का कारण और लक्षण	३४		
पदार्थ और प्रकाश को ज्ञान के कारणत्व का निषेध	३५		

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कारण होने से ज्ञेयरूपता मानने का निराकरण ३८
पारमार्थिक प्रत्यक्ष का लक्षण ३९
पारमार्थिक प्रत्यक्ष के वैशद्य ४०

अथ तृतीयः परिच्छेदः

परोक्ष का लक्षण या निर्णय ४१
परोक्ष के कारण और भेद ४१
स्मृति प्रमाण का लक्षण ४२
स्मृति का दृष्टान्त ४३
प्रत्यभिज्ञान का स्वरूप ४३
प्रत्यभिज्ञान के दृष्टान्त ४४
तर्कप्रमाण के कारण व लक्षण ४५
व्याप्तिज्ञान की प्रवृत्तिका प्रकार ४५
अनुमान का कारण और स्वरूप ४६
हेतु (साधन) का लक्षण ४६
अविनाभाव का लक्षण ४६
सहभावनियम का लक्षण ४७
क्रमभावनियम का लक्षण ४७
व्याप्तिज्ञान के निर्णय का कारण ४८
साध्य का स्वरूप ४८
प्रसिद्ध विशेषण का फल ४९
इष्टाबाधित पद का सार्थक्य ४९
साध्यविशेषण का अधिकारी ५०
इष्टविशेषण का अधिकारी ५०
उपर्युक्त कथन का कारण ५०
साध्य का निर्णय ५१
धर्मी का नामान्तर ५१
पक्ष का लक्षण ५१
विकल्पसिद्ध धर्मी में साध्य ५२
विकल्पसिद्ध धर्मी का उदाहरण ५२
उभयसिद्ध धर्मी में साध्य ५२
उभयसिद्ध धर्मी का दृष्टान्त ५३
द्विविधधर्मी के दृष्टान्त ५३
व्याप्तिकाल में साध्य का नियम ५३
धर्मी को साध्य मानने से हानि ५३
पक्ष के प्रयोग की आवश्यकता ५४
पक्ष के प्रयोग की आवश्यकता का दृष्टान्त ५४
पक्ष के प्रयोग की आवश्यकता की पुष्टि ५५
अनुमान के अङ्गों का निर्णय ५६
उदाहरण को अनुमान का अंग न होने का कारण ५६
उदाहरण की आवश्यकता का खण्डन ५७
उदाहरण के अनुमानाङ्ग होने का खण्डन ५८
व्याप्तिस्मरणार्थ उदाहरण की अनावश्यकता ५९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपनय और निगमन के प्रयोग बिना उदाहरण के प्रयोग से हानि	५९	काल व्यवधान होने पर भी कार्यकारण माननेका खण्डन	६८
केवल उदाहरणप्रयोग से शंका	६०	उपर्युक्त कथन में हेतु	६९
उपनय और निगमन को अनुमानाङ्ग न होनेका स्पष्टीकरण	६०	सहचरहेतु का पृथक्पन	६९
अनुमान प्रयोग में केवल हेतु की आवश्यकता	६०	अविरुद्धव्याप्योपलब्धि	७०
उदाहरण उपनय और निगमन की आवश्यकता	६१	अविरुद्धकार्योपलब्धि	७१
दृष्टान्त के भेद	६१	अविरुद्धकारणोपलब्धि	७१
अन्वय दृष्टान्त का लक्षण	६२	अविरुद्धपूर्वचरोलब्धि	७२
व्यतिरेक दृष्टान्त का स्वरूप	६२	अविरुद्धोत्तरचरोपलब्धि	७२
उपनय का लक्षण	६२	अविरुद्धसहचरोपलब्धि	७३
निगमन का स्वरूप	६३	विरुद्धोपलब्धि के भेद	७३
अनुमान के भेद	६३	विरुद्धव्याप्योलब्धि	७४
अनुमान के भेदों का स्पष्टीकरण	६३	विरुद्धकार्योपलब्धि	७५
स्वार्थानुमान का लक्षण	६३	विरुद्धकारणोपलब्धि	७५
परार्थानुमान प्रतिपादक वचन के परार्थानुमानपना	६४	विरुद्धपूर्वचरोपलब्धि	७५
हेतु के भेद	६५	विरुद्धोत्तरचरोपलब्धि	७५
दोनों हेतुओं के विषय	६५	विरुद्धसहचरोपलब्धि	७६
अविरुद्धोपलब्धि के भेद	६६	अविरुद्धानुपलब्धि के भेद	७६
कारणहेतु के विधिसाधकपना या पूर्वचर और उत्तरचर हेतु से भिन्नता	६७	अविरुद्धस्वभावानुपलब्धि	७७
		अविरुद्धव्यापकानुपलब्धि	७७
		अविरुद्धकार्यानुपलब्धि	७८
		अविरुद्धकारणानुपलब्धि	७८
		अविरुद्धपूर्वचरानुपलब्धि	७९
		अविरुद्धोत्तरचरानुपलब्धि	७९
		अविरुद्धसहचरानुपलब्धि	७९
		विरुद्धानुपलब्धि के भेद	८०
		विरुद्धकार्यानुपलब्धि	८०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विरुद्धकारणानुपलब्धि ८१
विरुद्धस्वभावानुपलब्धि ८१
हेत्वन्तरों का अन्तर्भाव ८१
पूर्वानुक्त हेतु का प्रथमोदाहरण ८२
कार्यकार्य हेतु का अन्तर्भाव ८२
कार्यकार्य हेतु के अन्तर्भाव की पुष्टि ८२
अनुमानावयवप्रयोगनियम ८३
व्युत्पन्न के प्रति प्रयोग की पुष्टि ८३
उदाहरण बिना व्याप्ति के निश्चयाभाव की आशंका का निराकरण ८४
दृष्टान्तादिक के प्रयोग की साध्य की सिद्धि के प्रति विफलता ८४
पक्ष के प्रयोग की सफलता ८५
आगम का स्वरूप और कारण ८५
वचन या शब्द से वास्तविक अर्थबोध होने का कारण ८६
शब्द से अर्थावबोध का दृष्टान्त ८६

अथ चतुर्थः परिच्छेदः

प्रमाण के विषय का निर्णय ८७
वस्तु की अनेकान्तात्मकता के समर्थन में हेतु ८७
सामान्य के भेद ८८
तिर्यक्सामान्य का स्वरूप ८९
ऊर्ध्वतासामान्य का लक्षण ८९
विशेष के भेद ९०
विशेष के भेदों के नाम ९०
पर्यायविशेष का स्वरूप ९०
व्यतिरेकविशेष का लक्षण ९०

अथ पंचमः परिच्छेदः

प्रमाण के फल का निर्णय ९१
प्रमाण के फल की भिन्नता ९१
प्रमाण के फल की व्यवस्था का समर्थन ९२

अथ षष्ठः परिच्छेदः

आभासों का वर्णन ९३
प्रमाणाभास के भेद ९३
अस्वसम्विदितादि के प्रमाणाभास होने में हेतु ९३
अस्वसम्विदितादि ज्ञानों के दृष्टान्त ९३
सन्निकर्ष के प्रमाणत्व का निषेध ९४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रत्यक्षाभास का लक्षण	९४
परोक्षाभास का स्वरूप	९५
स्मरणाभास का लक्षण	९५
प्रत्यभिज्ञानाभास का स्वरूप	९५
तर्काभास का लक्षण	९६
अनुमानाभास का स्वरूप	९६
पक्षाभास का लक्षण	९७
अनिष्टपक्षाभास का उदाहरण	९७
सिद्धपक्षाभास का दृष्टान्त	९७
बाधितपक्षाभास के भेद	९७
प्रत्यक्षबाधित का दृष्टान्त	९८
अनुमानबाधितपक्षाभासोदाहरण	९८
आगमबाधितपक्षाभासोदाहरण	९८
लोकबाधितपक्षाभासदृष्टान्त	९९
स्ववचनबाधितपक्षाभास का दृष्टान्त	९९
हेत्वाभास के भेद	१००
असिद्धहेत्वाभास के भेद या स्वरूप	१००
स्वरूपासिद्धहेत्वाभासदृष्टांत	१००
चाक्षुषत्वहेतु के स्वरूपासिद्धत्व	१०१
सन्दिग्धासिद्ध का उदाहरण	१०१
धूमवत्वहेतु के सन्दिग्धासिद्धत्व	१०१
असिद्धहेत्वाभास के भेदान्तर	१०२
असिद्धहेत्वाभास के भेदान्तर की पुष्टि	१०२
विरुद्धहेत्वाभास का स्वरूप	१०३
अनैकान्तिक हेत्वाभास का स्वरूप	१०३
निश्चितविपक्षव्यावृत्ति का दृष्टान्त	१०४
निश्चित विपक्षव्यावृत्तित्व की पुष्टि	१०४
शंकितविपक्षवृत्ति का उदा०	१०४
शंकित विपक्षवृत्ति की पुष्टि	१०५
अकिंचित्कर हेत्वाभास लक्षण	१०५
सिद्धसाध्याकिंचित्करोदाहरण	१०५
शब्दत्वहेतु के अकिंचित्करत्व में हेतु	१०६
शब्दत्वहेतु के अकिंचित्करत्व की पुष्टि	१०६
अकिंचित्कर हेत्वाभास के प्रयोग की उपयोगिता	१०६
अन्वयदृष्टान्ताभास के भेद	१०७
अन्वयदृष्टान्ताभासों के उदा.	१०७
अन्वयदृष्टान्ताभास का उदाहरणान्तर	१०८
अन्वयदृष्टान्ताभासत्वपुष्टि	१०९
व्यतिरेकदृष्टान्ताभास के भेद	१०९
व्यतिरेकदृष्टान्ताभास का उदाहरणान्तर	११०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बालप्रयोगाभास का लक्षण १११
बालप्रयोगाभास का दृष्टान्त १११
द्वितीय बालप्रयोगाभास १११
उल्टे प्रयोग के बालाभासत्व ११२
उल्टे प्रयोग के बालप्रयोगाभासत्व में हेतु ११२
आगमाभास का लक्षण ११३
आगमाभास का उदाहरण ११३
आगमाभास का उदाहरणांतर ११३
पूर्वोदाहरणों के आगमाभासत्व में हेतु ११३
प्रमाणसंख्याभास का वर्णन ११४
प्रत्यक्षमात्र के संख्याभासत्व ११४
प्रत्यक्षादि संख्याभासत्व का दृष्टीकरण ११५
प्रमाणांतर से परबुद्ध्यादिक की सिद्धि का निषेध ११५
तर्क द्वारा संख्याभासत्व के निराकरण से हानि ११५
उपर्युक्त कथन की पुष्टि ११६
प्रमाणविषयाभास का स्वरूप ११७
केवल सामान्यादिक के विषयाभासत्व में हेतु ११७
स्वयं समर्थ पदार्थ के निरपेक्ष कार्यकारित्व से हानि ११८
स्वयं समर्थ पदार्थ के सहकारिसाहाय्य से कार्यकारित्व मानने से हानि ११८
स्वयं असमर्थ पदार्थ के कार्यकारित्व मानने से हानि ११८
प्रमाणफलाभास का वर्णन ११९
फल को प्रमाण से सर्वथा भिन्न मानने से हानि ११९
कल्पना से प्रमाण और फल का व्यवहार माननेमें आपत्ति ११९
कल्पनामात्र से फलव्यवहार न हो सकने में दृष्टांत १२०
प्रमाण और उसके फल में भेदनिर्णय १२०
प्रमाण या फल में सर्वथा भेद मानने में हानि १२०
समवाय से प्रमाण और प्रमाणफल का निर्णय मानने का निषेध १२१
स्वपक्ष के साधन और दूषण की व्यवस्था १२२
नयादितत्त्वों के स्वरूप के निर्णय का उपाय १२२
सन्निकर्ष पर संस्कृत निबंध १२२
नय विषय पर निबंध १२३
सूत्रकार का अन्तिम वक्तव्य १२४
आवश्यक निबन्ध १२५–१४४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री जिनाय नमः

आचार्यप्रवर श्रीमाणिक्यनन्दिविरचित

परीक्षामुख सटीक

प्रथमः परिच्छेदः

ग्रन्थकार की प्रतिज्ञा और उद्देश्य

प्रमाणादर्थसंसिद्धि – स्तदाभासाद्विपर्ययः ।

इति वक्ष्ये तयो लंक्ष्म, सिद्धमल्पं लघीयसः ॥ १ ॥

अर्थ—प्रमाण (सच्चे ज्ञान) से पदार्थों का निर्णय होता है और प्रमाणाभास (झूठेज्ञान) से पदार्थों का निर्णय नहीं होता । इसलिये मन्दबुद्धि वाले बालकों के हितार्थ उन दोनों के संक्षिप्त और पूर्वाचार्य–प्रसिद्ध लक्षण कहता हूँ ।

संस्कृतार्थ—प्रमाणात् (सम्यग्ज्ञानात्) पदार्थानां निर्णयः, प्रमाणाभासात् (मिथ्याज्ञानात्) पदार्थानामनिर्णयश्च जायते । अतो मन्दमतीनां बालकानां प्रबोधाय तयोः प्रमाणप्रमाणाभासयोः संक्षिप्तं पूर्वाचार्यप्रसिद्धस्वा लक्षणमहं ग्रन्थकारो वक्ष्ये ।

विशेषार्थ—मा-अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग लक्ष्मी । आण-शब्द अर्थात् दिव्यध्वनि । प्र-उत्कृष्ट । मा च आणश्च माणौ, प्रकृष्टौ माणौ यस्य सः प्रमाणः । उत्कृष्टलक्ष्मी और उत्कृष्टवाणी सहित व्यक्ति अरिहन्त भगवान् ही हैं । क्योंकि अनन्तचतुष्टय रूप अन्तरङ्ग और समवसरणादिरूप बहिरङ्ग लक्ष्मी अन्य हरिहरादिक के सम्भव नहीं । तथा प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण से निर्बाध दिव्यध्वनि भी अन्य के सम्भव नहीं । इस प्रकार यहाँ प्रमाण शब्द का अर्थ 'अरिहन्त' हुआ । उनके असाधारण गुण दिखाना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही उनकी स्तुतिरूप मंगल हुआ। प्रमाणाभास-हरि-हरादिक ॥

प्रमाणस्य लक्षणम्, प्रमाण का लक्षण—

स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम् ॥ १ ॥

अर्थ—अपना और अपूर्वार्थ का निश्चायकज्ञान प्रमाण कहलाता है।

संस्कृतार्थं—यत्स्वमन्यपदार्थान्वा विजानाति तत्; अथवा यत् स्वस्वरूपस्य पदार्थान्तरस्वरूपस्य वा निर्णयं विदधाति तदेव प्रमाणं (सम्यग्ज्ञानं) प्रोच्यते।

तथा चानुमानम्-प्रमाणं स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकज्ञानमेव, प्रमाणत्वात्, यत्तु स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकज्ञानं न भवति तन्न प्रमाणं, यथा संशयादिः घटादिश्च, प्रमाणं च विवादापन्नं, तस्मात्स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकज्ञानं प्रमाणम् ॥ १ ॥

विशेषार्थ—जो अपने आपको जानता है और अन्य

प्रमाणलक्षणकारकसूत्र नं० २ के पदों का सार्थक्य—

१— अज्ञानरूप सन्निकर्ष, कारकसाकल्य और इन्द्रियप्रवृत्ति के प्रमाणता के निराकरण के हेतु ज्ञानपद दिया गया है।

२— निर्विकल्पकज्ञान को प्रमाणता के निराकरण के हेतु व्यवसायपद दिया गया है।

३—विज्ञानाद्वैतवाद, ब्रह्माद्वैतवाद तथा शून्यैकान्तवाद को प्रमाणता के निराकरण के हेतु अर्थपद दिया गया है।

४—गृहीतग्राही धारावाही ज्ञान को प्रमाणता के खण्डनहेतु अपूर्व-विशेषण दिया गया है।

५— अस्वसम्वेदनज्ञान को प्रामाणिकता के निषेध के हेतु प्रमाण के लक्षण में स्वविशेषण दिया गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पदार्थों को भी जानता है अर्थात् अपने स्वरूप का तथा पर पदार्थों के स्वरूप का निर्णय करता है वही प्रमाण या सच्चा-ज्ञान कहा जाता है।

'व्यतिकीर्णवस्तुव्यावृत्तिहेतु र्लक्षणम्' मिली हुई अनेक वस्तुओं में से किसी एक वस्तु को जुदे कराने वाले हेतु को लक्षण कहते हैं ॥ १ ॥

प्रमाण का लक्षणान्तर या ज्ञान का प्रमाणपना—

हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत् ।

अर्थ—जो सुख की प्राप्ति तथा दुःख के दूर करने में समर्थ होता है उसे प्रमाण कहते हैं। ऐसा वह प्रमाण 'ज्ञान' ही हो सकता है, अन्य सन्निकर्ष आदिक नहीं ॥ २ ॥

संस्कृतार्थ—इन्द्रियार्थयोः सम्बन्धः सन्निकर्षः। स च सन्निकर्षोऽचेतनो विद्यते। अचेतनाच्च सुखावाप्तिः दुःखविनाशो वा न जायते, अतः सन्निकर्षः प्रमाणं नो भवेत्। परन्तु ज्ञानात्सुखावाप्तिः दुखविनाशो वा जायते, अतो ज्ञानमेव प्रमाणम्। यतः सुखावाप्तौ दुःखविनाशे वा यत् समर्थं तदेव प्रमाणं प्रोक्तम्।

अस्यानुमानप्रयोगश्चेत्थम्—प्रमाणं ज्ञानमेवेति प्रतिज्ञा, हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थत्वादिति हेतुः, हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि ज्ञानं, नान्यत्, यथा घटादयः इत्युदाहरणम्। तथा चेदमित्युपनयः। तस्मात्तथेति निगमनम् ॥ २ ॥

विशेषार्थः—इन्द्रिय और पदार्थों का सम्बन्ध सन्निकर्ष कहलाता है। वह सन्निकर्ष अचेतन होता है और अचेतन (जड़) से सुख की प्राप्ति तथा दुःख का परिहार होता नहीं। इस कारण सन्निकर्ष प्रमाण नहीं हो सकता। परन्तु ज्ञान से सुख की प्राप्ति और दुःख का परिहार होता है, इसलिये ज्ञान प्रमाण है।

'प्रकर्षेण मीयतेऽनेन' इति प्रमाणम्। अर्थात् जो संशय, विपर्यय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और अनध्यवसायरहित होकर वस्तु के स्वरूप को जानता है वह प्रमाण कहलाता है ॥ २ ॥

प्रमाणस्य निश्चायकत्वम्, प्रमाण का निश्चायक पना—

तन्निश्चयात्मकं समारोपविरुद्धत्वादनुमानवत् ॥ ३ ॥

अर्थ— वह प्रमाण निश्चयात्मक है। संशय, विपर्यय तथा अनध्य-वसाय रहित होने से, अनुमान की तरह ॥ ३ ॥

संस्कृतार्थ—यथा समारोपविरुद्धत्वाद् बौद्धाङ्गीकृतमनुमानं तन्मते निश्चयात्मकं, तथार्हन्मते समापरोपविरुद्धत्वात्प्रमाणमपि निश्चया-त्मकम् ॥ ३ ॥

विशेषार्थ—बौद्ध अनुमान को पदार्थों को निश्चय करने वाला मानता है और प्रत्यक्ष को निर्विकल्पक अर्थात् अनिश्चायक (निश्चय नहीं करने वाला) मानता है। परन्तु जैनों ने सभी प्रमाणों को स्व और पर का निश्चायक (निश्चय करने वाला) माना है। यही बतलाने के लिये बौद्धों के द्वारा माने हुये अनुमान का दृष्टान्त देकर सभी प्रमाणों को निश्चयात्मक सिद्ध किया गया है। जब कि अनुमान को निश्चयात्मक माना है, तो प्रत्यक्ष को भी निश्चयात्मक मानना चाहिये। क्योंकि जो किसी पदार्थ का तथा अपना निर्णय निश्चयरूप से नहीं करता वह प्रमाण कैसे हो सकता है ?

१—दो तरफ ढलता हुआ निर्णयरहित (अनिश्चित) ज्ञान संशय कहलाता है। जैसे यह सीप है या चांदी, ठूंठ है या पुरुष इत्यादि। २—उल्टाज्ञान विपर्यय कहलाता है। जैसे रस्सी में सांप का या सुवर्ण में पीतल का ज्ञान। ३—अनिश्चित तथा विकल्प (इच्छा) रहित ज्ञान अनध्यवसाय कहलाता हैं। जैसे चलते समय स्पर्श हुये पत्थर या तृण वग़ैरह में 'कुछ है' ऐसा ज्ञान। ॥ ३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपूर्वार्थस्य समर्थनम्, अपूर्वार्थ का समर्थन या लक्षण—

अनिश्चितोऽपूर्वार्थः ॥ ४ ॥ जिसका पहले निश्चय नहीं अपूर्वार्थ

अर्थ—जिस पदार्थ का पहिले कभी किसी सच्चे ज्ञान से निर्णय नहीं हुआ हो उसे अपूर्वार्थ कहते हैं। प्रमाण ऐसे अपूर्वार्थ का निश्चय करता है। अतः जो ज्ञान किसी प्रमाण से जाने हुये पदार्थ को जानता है वह प्रमाण नहीं होता, क्योंकि उसने उस पदार्थ का निश्चय नहीं किया, किन्तु निश्चित ही को जाना है ॥ ४ ॥

संस्कृतार्थ—कस्माच्चिदपि सम्यग्ज्ञानाद् यस्य पदार्थस्य कदापि निर्णयो न जातः सः अपूर्वार्थो निगद्यते। प्रमाणं तमेव निश्चिनोति।। अतो यज्ज्ञानं कस्माच्चित्प्रमाणाद् विज्ञातं पदार्थं विजानाति तन्न प्रमाणम्। यतस्तेन तस्य पदार्थस्य निश्चयो न विहितः, किन्तु निश्चितमेव विज्ञातम् ॥ ४ ॥

विशेषार्थ—ईहाज्ञान यद्यपि अवग्रहादिक के द्वारा ज्ञात पदार्थ को ही जानता है परन्तु अवग्रहादिक जिस विशेष को नहीं जान सकते हैं उस अवान्तर विशेष (अन्यावशेष) को जानता है इसलिये ईहा का विषय अपूर्वार्थ ही है ॥ ४ ॥

अपूर्वार्थस्य लक्षणान्तरम्, अपूर्वार्थ का दूसरा लक्षण—

दृष्टोऽपि समारोपात्तादृक् ॥ ५ ॥ देखा गया भी

अर्थ—किसी प्रमाण से जाने हुये पदार्थ के विषय में भी जब संशय, विपर्यय या अनध्यवसाय हो जाता है तब वह पदार्थ भी अपूर्वार्थ कहा जाता है। और उसका जानने वाला ज्ञान भी प्रमाणस्वरूप होता है ॥५॥

संस्कृतार्थ—केनापि प्रमाणेन विज्ञातेऽपि पदार्थे यदा संशयो, विपर्ययः, अनध्यवसायो वा जायते तदा सोऽप्यपूर्वार्थो निगद्यते, तथा च तस्य वेदकं ज्ञानमपि प्रमाणस्वरूपं भवेत् ॥ ५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वव्यवसायस्य समर्थनम्, स्वव्यवसाय का समर्थन—

स्वोन्मुखतया प्रतिभासनं स्वस्य व्यवसायः ॥ ६ ॥

अर्थ—अपने आपके अनुभव से होने वाले प्रतिभास को स्वव्यवसाय (स्वस्वरूप का निश्चय) कहते हैं। इसमें मैं अपने को जानता हूँ ऐसी प्रतीति होती है ॥ ६ ॥

संस्कृतार्थ—स्वस्योन्मुखतया प्रतिभासनं स्वव्यवसायो निगद्यते। अत्र 'अहमात्मानं जाने' इति प्रतीतिर्जायते ॥ ६ ॥

स्वव्यवसायस्य दृष्टान्तः, स्वव्यवसाय का दृष्टान्त—

अर्थस्येव तदुन्मुखतया ॥ ७ ॥

अर्थ—जिस प्रकार घट पट इत्यादि शब्दों का जब हमें ज्ञान होता है तब उस ज्ञान के विषयभूत उन उन पदार्थों का ज्ञान भी हमें अवश्य होता है। उसी प्रकार जब आत्मा की ओर लक्ष्य होता है तब आत्मा क्या चीज है इसका भी ज्ञान अवश्य हो जाता है ॥ ७ ॥

संस्कृतार्थ—यथा यदा घटपटादिशब्दानां प्रतीतिर्जायते तदा तज्ज्ञानविषयभूतानां तत्तत्पदार्थानां ज्ञानमपि अस्माकमवश्यं जायते। तथा यदात्मानं प्रति लक्ष्यं जायते तदाऽऽत्मा किम्वस्तु विद्यते एतस्यापि ज्ञानमवश्यं जायते ॥ ७ ॥

पदार्थ को जानने के समय होने वाली प्रतीति—

घटमहमात्मना वेद्मि ॥ ८ ॥

अर्थ—मैं अपने द्वारा घट को जानता हूँ। इस ज्ञान में अहम् और आत्मना पद से स्व का निश्चय होता है और घटम् पद से परपदार्थ घट का बोध होता है। इसी प्रकार प्रमाण से सर्वत्र स्व और पर का व्यवसाय (ज्ञान) होता है। इसलिये प्रमाण को स्व और पर का निश्चायक कहा है ॥ ८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृतार्थ—'घटमहमात्मना वेद्मि' इति प्रतीतौ 'अहम्' 'आत्मना' वेति पदाभ्यां स्वव्यवसायो जायते तथा घटम्पदेन परपदार्थबोधो जायते। तथैव प्रमाणेन सर्वत्र स्वस्य परस्य वा बोधो जायते। अतएव प्रमाणं स्वपरनिश्चायकं निगदितम् ॥ ८ ॥

विशेषार्थ—मैं (कर्त्ता) घट को (कर्म) ज्ञान से (करण) और जानता हूँ (क्रिया)। ज्ञान के समय सर्वत्र इन चार बातों की प्रतीति होती है। उनमें 'मैं' करके अपनी प्रतीति होती है, इसी को ज्ञान के स्वरूप का निश्चय कहते हैं। क्योंकि यह आत्मा की प्रतीति है और वह आत्मा ज्ञानस्वरूप है। इस कारण 'मैं' पद के द्वारा ज्ञान अपने आप को जानता है। 'घट को' इस पद के द्वारा अपूर्वार्थ (परपदार्थ) की प्रतीति होती है। 'जानता हूँ' यह क्रिया की प्रतीति है, जिसे प्रमिति; अज्ञान निवृत्ति; ज्ञप्ति वा प्रमाणफल भी कहते हैं। और 'ज्ञान से' इस पद के द्वारा करणरूप प्रमाण की प्रतीति होती है जिसका फल अज्ञाननिवृत्ति है ॥ ८ ॥

परव्यवसायकतामात्रस्य खंडनम्, केवल परव्यवसाय का खंडन—

कर्मवत्कर्तृकरणक्रिया प्रतीतेः ॥ ९ ॥

अर्थ—प्रमाण के द्वारा जैसे घट पट इत्यादि रूप कर्म का बोध होता है उसी प्रकार कर्त्ता (मैं) करण (अपने द्वारा) और क्रिया (जानता हूँ) का भी बोध होता है। अर्थात् प्रमाण के द्वारा जैसे मैं घटपटादिक को जानता हूँ ऐसी प्रतीति होती है उसी प्रकार कर्त्ता, करण और क्रिया के प्रति भी इन कर्त्ता आदिक को भी जानता हूँ ऐसी प्रतीति होती है, इसमें बाधा नहीं, अनुभवसिद्ध है। इसलिये प्रमाण को केवल परव्यवसायक मानना ठीक नहीं है ॥ ९ ॥

संस्कृतार्थ— प्रमाणेन यथा घटपटादिरूपस्य कर्मणो बोधो जायते तथैव कर्त्तुः, करणस्य, क्रियाया वा बोधो जायते। अर्थात्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमाणेन यथा 'अहं घटपटादिकं (कर्म) जाने' इति प्रतीति र्जायते तथा कर्तृकरणक्रियाः प्रत्यपि 'अहं कर्त्रादिकं जाने' इति प्रतीति र्जायते, नात्र काचिद् बाधा, अनुभवसिद्धं विद्यते ॥ ९ ॥

विशेषार्थ— एक ही ज्ञान में कर्त्ता आदि अनेक कारकों की व्यवस्था भेदविवक्षा से घट जाती है। क्योंकि जैनसिद्धान्त स्याद्वाद है। विभिन्न अपेक्षाकृत वर्णनसे विरोध नहींआता, सर्वथा एकान्तवादमें ही यह विरोध सम्भव होता है। इस विवेचन से प्रमाण के विषय में नैयायिक और मीमांसक की मान्यताओं का खण्डन किया गया है, जो प्रमेयरत्नमाला ग्रन्थ में स्पष्ट है ॥ ९ ॥

शब्दोच्चारण बिना ही स्वव्यवसाय का स्पष्टीकरण—

शब्दानुच्चारणेऽपि स्वस्यानुभवनमर्थवत् ॥ १० ॥

अर्थ—जैसे प्रत्यक्ष रखी हुई घटपटादि वस्तुओं का और परोक्ष मोदक आदि वस्तुओं का तद्वाचक शब्द के उच्चारण बिना ही विचार या अवलोकन मात्र से ही ज्ञान में तदाकार अनुभव हो जाता है कि यह अमुकवस्तु है और यह अमुकवस्तु। उसी प्रकार 'मैं यह करूँगा' 'मेरे द्वारा यह हुआ' इत्यादि ज्ञान (विचार) में 'मैं और मेरे द्वारा' इत्यादि रूप से आत्मा का बोध (अनुभव) होता है, वह शब्दोच्चारण बिना भी होता है ॥ १० ॥

संस्कृतार्थ— यथा प्रत्यक्षाणां घटपटादीनां वस्तूनां, परोक्षाणां मोदकादीनाम्वा तद्वाचकशब्दानुच्चारणेऽपि विचारमात्रेणैवालोकनमात्रेणैव वा ज्ञाने तदाकार अनुभवो जायते, यदिदममुकवस्तु विद्यते; इदं चामुकवस्तु। तथा 'अहमिदं करिष्ये' 'इदं मया जातम् इत्यादि विचारे (ज्ञाने) 'अहं, मया' इत्यादि रूपेण यःस्वबोधः जायते, सः शब्दोच्चारणं विनैव जायते ॥ १० ॥

विशेषार्थ—इस विवेचन से. 'कर्त्ता आदि का ज्ञान शब्दोच्चारण से ही होता है, इस प्रकार मानने वालों की मान्यता का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खंडन किया गया है। यदि वे वाक्योच्चारण पक्ष में ऐसा मानते तो सत्य हो सकता था, परन्तु उनका ज्ञान को शब्दोच्चारणजन्य एकान्तरूप से कहना ठीक नहीं है ॥ १० ॥

शब्दोच्चारण बिना भी स्वप्रतीति की पुष्टि—

को वा तत्प्रतिभासिनमर्थमध्यक्षमिच्छँस्तदेव तथा नेच्छेत्

अर्थ—लौकिक या परीक्षक ऐसा कौन पुरुष है जो ज्ञान से प्रतिभासित हुये पदार्थों को तो प्रत्यक्षज्ञान का विषय माने, परन्तु स्वयं ज्ञान को प्रत्यक्ष नहीं माने, अर्थात् सभी मानेंगे। कि जब ज्ञान दूसरे पदार्थों का प्रत्यक्ष करता है तब अपना भी प्रत्यक्ष करता होगा। यदि अपने को नहीं जानता होता, तो दूसरे पदार्थों को भी नहीं जान सकता। जैसे घट वगैरह अपने आप को नहीं जानते, इसलिये दूसरों को भी नहीं जानते हैं ॥ ११ ॥

संस्कृतार्थ—यदा ज्ञानं परपदार्थप्रत्यक्षं करोति तदा स्वस्य प्रत्यक्षमपि तस्यावश्यं स्यात्। यदि च स्वं न जानीयात्तर्हि परपदार्थान् ज्ञातुमपि न शक्नुयात्। यथा घटादयः स्वं न जानन्त्यतः परमपि न जानन्ति। इति स्थितौ को लौकिकः परीक्षको वा जनो विद्यते यो ज्ञानप्रतिभासिनमर्थं प्रत्यक्षं स्वीकुर्वन् स्वयं ज्ञानं प्रत्यक्षं नो स्वीकुर्यात्? ॥ ११ ॥

विशेषार्थ— जो यह कहेगा कि मैं घट का प्रत्यक्ष कर रहा हूं उसको 'मैं' शब्द के वाच्य ज्ञान का भी प्रत्यक्ष मानना होगा ॥ ११ ॥

स्वप्रतीतिपुष्टेरुदाहरणम्, स्व की प्रतीति की पुष्टि का उदाहरण—

प्रदीपवत् ॥ १२ ॥

अर्थ—जैसे दीपक घट पट आदि दूसरे पदार्थों को प्रकाशित करता हुआ अपने आप (दीपक) को भी प्रकाशित करता है, वैसे ही ज्ञान घट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पट आदि को जानता हुआ अपने आप को भी जानता है।

संस्कृतार्थ—यथा दीपको घटपटादिकं परपदार्थं प्रकाशयन् स्वम् (दीपकम्) अपि प्रकाशयति तथैव ज्ञानमपि घटपटादिपरपदार्थं जानत्सत् स्वमपि जानाति ॥ ११ ॥

विशेषार्थ— घटपटादिक का प्रकाशक दीपक यदि अपने आपको प्रकाशित नहीं करता तो उसके प्रकाशन के लिये दूसरे दीपक की आवश्यकता होती; परन्तु होती नहीं है। इस से सिद्ध होता है कि दीपक स्व और पर का प्रकाशक है। क्योंकि सर्वत्र दृष्ट पदार्थों से ही अदृष्ट पदार्थों की कल्पना की जाती है ॥ ११ ॥

प्रमाण के प्रामाण्य का निर्णय—

तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च ॥ १३ ॥

वह ज्ञान स्वतः और परतः और

अर्थ—उस प्रमाण का प्रामाण्य (सचाई, वास्तविकता या पदार्थ का यथावत् जानने का निर्णय।) दो प्रकार से होता है। अभ्यासदशा में अन्य पदार्थ की सहायता बिना अपने आप और अनभ्यास दशा में अन्य कारणों की सहायता से।

संस्कृतार्थ—तस्य प्रमाणस्य प्रामाण्यस्य (सत्यतायाः वास्तविकतायाः, यथावद्विज्ञतायाः वा) निर्णयः प्रकारद्वयेन जायते। अभ्यासदशायामन्यपदार्थसहायतां विना स्वतः, अनभ्यासदशायाञ्चान्यकारणानां सहायतया ॥ १३ ॥

विशेषार्थ—जहाँ निरन्तर जाया आया करते हैं, वहाँ के नदी और तालाब आदि स्थानों के परिचय को अभ्यासदशा कहते हैं। इस स्थान में प्रामाण्य का निर्णय स्वतः हो जाता है। और जहाँ कभी गये आये नहीं वहाँ के नदी और तालाब आदि स्थानों के अपरिचय को अनभ्यासदशा कहते हैं। ऐसे स्थानों में दूसरे कारणों से ही प्रामाण्य का निर्णय होता है ॥ १३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसे कोई व्यक्ति सदा द्रोणगिरि जाया करता है और वहाँ के रास्ते में जितने कूप तथा तड़ाग वगैरह आते हैं सबको भली भांति जानता है। वह जब–जब वहाँ जाता है तब–तब पूर्व के परिचित चिह्नों को देखते ही जान लेता है कि यहाँ जल है और उन्हीं चिन्हों से यह भी जान लेता है; कि मुझे जो ज्ञान हुआ है वह बिलकुल ही ठीक है। इसमें यही प्रमाण है कि वह व्यक्ति ज्ञान होने के बाद ही शीघ्रता से कुआ या तालाब में लोटा डोबने लग जाता है। अगर उसे अपने ज्ञान की सचाई नहीं होती तो कभी ऐसा नहीं कर सकता था। इससे निश्चय होता है कि अभ्यासदशा में स्वतः ही प्रामाण्य का निश्चय होता है।

एक दूसरा व्यक्ति पहली ही बार द्रोणगिरि गया और रास्ते में जैसे अन्य जलाशयों पर चिह्न होते हैं वैसे चिह्न देखे, तब उसे ज्ञान हुआ कि यहाँ जल है। परन्तु यह निर्णय नहीं कर सका कि किस खास स्थान पर जल है। अर्थात् ५० गज इस तरफ है या उस तरफ। इसके बाद जब वह देखता है कि अमुक ओर से स्त्रियाँ पानी लिये आ रही हैं अथवा शीतल और सुगन्धित वायु आ रही है तब वह जान लेता है कि यह मेरा 'जलज्ञान' सच्चा है। यदि सच्चा नहीं होता; तो ये स्त्रियाँ जल लेकर नहीं आतीं। फिर वह ५० गज आगे जा कर कुआ में लोटा डोब कर पानी भर लेता है। उसका पहला ज्ञान यद्यपि सत्य था, परन्तु उस सत्यता का निर्णय दूसरे ही कारणों से हुआ। इससे मालूम होता है कि अनभ्यासदशा में प्रामाण्य का निर्णय परतः होता है ॥१७॥

इति प्रथमः परिच्छेदः समाप्तः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ द्वितीयः परिच्छेदः

प्रमाणस्य भेदौ, प्रमाण के भेद—

तद् द्वेधा ॥१॥

अर्थ—प्रमाण के दो भेद हैं। अन्य प्रभेदों का इन दोनों में ही अन्तर्भाव हो जाता है ॥१॥

संस्कृतार्थ—प्रमाणस्य द्वावेव भेदौ विद्येते। अन्येषाम्प्रभेदानामनयो र्द्वयोरेवान्तर्भावात् ॥१॥

प्रमाण के दो भेदों का स्पष्टीकरण—

प्रत्यक्षेतरभेदात् ॥२॥

अर्थ—प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से प्रमाण के दो भेद हैं। अन्य मतावलम्बियों द्वारा कल्पित प्रमाण की एक, दो, तीन और चार संख्या के निराकरण के हेतु यह सूत्र बनाया गया है ॥२॥

संस्कृतार्थ—प्रत्यक्षं परोक्षं चेति प्रमाणस्य द्वौ भेदौ स्तः। प्रमाणस्यान्यमतावलम्बिपरिकल्पितानामेकद्वित्रिचतुः प्रभृतिभेदानां निराकरणार्थमेवेदं सूत्रं विहितम् ॥२॥

प्रत्यक्षप्रमाणस्य लक्षणम्, प्रत्यक्ष प्रमाण का लक्षण—

विशदं प्रत्यक्षम् ॥३॥

अर्थ—विशद (निर्मल, असहाय या स्पष्ट) ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं ॥३॥

संस्कृतार्थ—यस्य ज्ञानस्य प्रतिभासो निर्मलो विद्यते तत्प्रत्यक्षं प्रोच्यते। तथा चोक्तं श्रीविद्यानन्दिस्वामिभिः—निर्मलप्रतिभासत्वमेव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्पष्टत्वमिति । प्रतिपादितं च श्रीमद्भट्टाकलंकदेवैः प्रत्यक्षलक्षणं प्राहुः, स्पष्टं साकारमञ्जसा, इति । तथा चानुमानं—प्रत्यक्षं विशदज्ञानात्मकमेव, प्रत्यक्षत्वात्, परोक्षवत् । प्रत्यक्षमिति धर्मिनिर्देशः विशदज्ञानात्मकं साध्यं, प्रत्यक्षत्वादिति हेतुः, परोक्षवदिति दृष्टान्तः । तथाहि—यन्न विशदज्ञानात्मकं तन्न प्रत्यक्षं, यथा परोक्षं, प्रत्यक्षं च विकादापन्नं, तस्माद्विशदज्ञानात्मकमिति ॥३॥

विशेषार्थ—प्रत्यक्ष प्रमाण की निर्मलता अनुभव से जानी जाती है । वह अनुभव इस प्रकार से होता है । किसी व्यक्ति को किसी ने शब्दों के द्वारा अग्नि का ज्ञान करा दिया तब उस व्यक्ति ने सामान्य-रूप से अग्नि को जाना ।

इसके बाद किसी दूसरे मनुष्य ने उसी व्यक्ति को धूममात्र दिखा कर अग्नि का ज्ञान कराया । तब भी उस व्यक्ति ने जिस जगह धूम था उस जगह धूम से अग्नि का निश्चय किया, प्रत्यक्ष नहीं देखी ।

इसके बाद किसी तीसरे मनुष्य ने अग्नि का जलता हुआ अंगार लाकर उसके सामने रख दिया, तब उस पुरुष को बिलकुल निर्मल (स्पष्ट) ज्ञान हो गया कि अग्नि इस प्रकार, ऐसे रंग की गर्म होती है । इस तीसरी बार हुये ज्ञान में पहिले दो बार हुये ज्ञानों से विशेषता है, उसी को विशदता या निर्मलता कहते हैं । जिस ज्ञान में ऐसी विशदता होती है उसे प्रत्यक्ष कहते हैं ॥३॥

वैशद्यस्य लक्षणम्, वैशद्य का लक्षण—

प्रतीत्यन्तराव्यवधानेन विशेषवत्तया वा प्रतिभासनं वैशद्यम्

अर्थ—दूसरे ज्ञान की सहायता के बिना होने वाले तथा पदार्थ के आकार और वर्ण आदि की विशेषता से होने वाले प्रतिभास को वैशद्य कहते हैं ॥४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृतार्थ—एकस्याः प्रतीतेरन्या प्रतीतिः प्रतीत्यन्तरं, तेनाव्यवधानं; तेन प्रतिभासित्वं वैशद्यं निगद्यते। तथा च ज्ञानान्तरव्यवधानरहितत्वे सति वर्णसंस्थानादिविशेषग्रहणत्वं वैशद्यम् । विशदत्वं, निर्मलत्वं, स्पष्टत्वमिति तु वैशद्यस्यैव नामान्तराणि ॥४॥

विशेषार्थ—जो ज्ञान अपने स्वरूप का लाभ करने में दूसरे ज्ञानों की सहायता चाहता है वह परोक्ष कहलाता है। जैसे—स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम। तथा जो ज्ञान दूसरे ज्ञानों की सहायता नहीं चाहते हैं वे प्रत्यक्ष कहे जाते हैं। उनमें जो खासियत होती है उसी को विशदता, वैशद्य, स्पष्टता या निर्मलता कहते हैं ॥४॥

सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष का कारण और लक्षण—

इन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तं देशतः सांव्यवहारिकम् ॥५॥

अर्थ—इन्द्रियों और मन की सहायता से होने वाले एकदेश विशद (निर्मल) ज्ञान को सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहते हैं।

संस्कृतार्थ—यज्ज्ञानं देशतो विशदम् (ईषन्निर्मलम्) भवति, तथेन्द्रियाणां मनसश्च साहाय्येन समुत्पद्यते तत्सांव्यवहारिकप्रत्यक्षं प्रोच्यते। तद्यथा–समीचीनः प्रवृत्तिनिवृत्तिरूपो व्यवहारः संव्यवहारः, तत्र भवं प्रत्यक्षं सांव्यवहारिकप्रत्यक्षमिति व्युत्पत्त्यर्थः ॥५॥

विशेषार्थ—यह प्रत्यक्ष, मतिज्ञान का ही भेद है, जिसका श्री उमास्वामी महाराज ने 'मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्' इस सूत्र में दिये हुये मतिशब्द से उल्लेख किया है। इसके द्वारा प्रवृत्ति और निवृत्तिरूप व्यवहार चलता है, इसलिये इसको सांव्यवहारिक विशेषण दिया है, और थोड़ी निर्मलता लिये होता है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसलिये इसको प्रत्यक्ष कहा है, वस्तुतः यह परोक्ष ही है। क्योंकि 'आद्ये परोक्षम्' सूत्र कहता है, कि मतिज्ञान परोक्ष प्रमाण है।

पदार्थ और प्रकाश को ज्ञान के कारणत्व का निषेध—

नार्थालोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात्तमोवत् ॥६॥

अर्थ— पदार्थ और प्रकाश ज्ञान के कारण नहीं है। क्योंकि वे ज्ञान के विषय हैं। जो–जो ज्ञान का विषय होता है वह–वह ज्ञान का कारण नहीं होता, जैसे अन्धकार। अन्धकार ज्ञान का विषय तो होता है, क्योंकि सभी कहते हैं कि यहाँ अन्धकार है, परन्तु ज्ञान का कारण नहीं है, उल्टा ज्ञान का प्रतिबन्धक है।

संस्कृतार्थं—अर्थश्च आलोकश्चेति अर्थालोकौ पदार्थप्रकाशावित्यर्थः। कारणं न–ज्ञानजनकौ न स्तः। परिच्छेत्तुं योग्यौ परिच्छेद्यौ तयोर्भावस्तत्त्वं, तस्मात् परिच्छेद्यत्वात् ज्ञेयत्वादित्यर्थः। अर्थालोकाविति धर्मिनिर्देशः। कारणं न भवतीति साध्यम्। परिच्छेद्यत्वादिति हेतुः। तमोवदिति दृष्टान्तः। तथा च व्याप्तिः—यच्च परिच्छेद्यं तन्न ज्ञानं प्रति कारणं, यथान्धकारम्। परिच्छेद्यौ चार्थालोकौ, तस्मात् ज्ञानं प्रति कारणं न भवतः ॥६॥

विशेषार्थ—यदि पदार्थ को ज्ञान का कारण मानें तो मौजूद पदार्थों का ही ज्ञान होगा। जो उत्पन्न नहीं हुए हैं, अथवा नष्ट हो गये हैं, उनका ज्ञान नहीं होगा, क्योंकि जो है ही नहीं; वह कारण कैसे हो सकता है?

और जो आलोक (प्रकाश) को कारण मानते हैं उन्हें रात्रि में कुछ भी ज्ञान नहीं होगा। यह भी नहीं कह सकेंगे कि यहाँ अन्धकार है ॥६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पदार्थ और प्रकाश के ज्ञानकारणता के निषेध में युक्ति—

तदन्वयव्यतिरेकानुविधानाभावाच्च केशोण्डुकज्ञानवन्नक्तंचरज्ञानवच्च ॥७॥

अर्थ—अर्थ और आलोक ज्ञान के कारण नहीं हैं। क्योंकि ज्ञान का अर्थ तथा आलोक के साथ अन्वय और व्यतिरेक नहीं है। जैसे केशों में होने वाले मच्छर के ज्ञान के साथ तथा रात्रि में होने वाले, उल्लू के ज्ञान के साथ ॥७॥

संस्कृतार्थ—ज्ञानम् अर्थकारणकं न भवति, अर्थान्वयव्यतिरेकानुविधानाभावात्। यत्तस्यान्वयव्यतिरेकौ नानुविदधाति, न तत् तत्कारणकं, यथा केशोण्डुकज्ञानम्। नानुविदधते च ज्ञानमर्थान्वयव्यतिरेकौ तस्मादर्थकारणकं न भवतीत्यर्थः। २—किञ्च ज्ञानं न प्रकाशकारणकं, प्रकाशान्वयव्यतिरेकानुविधानाभावात्। यत्तस्यान्वयव्यतिरेकौ नानुविदधाति न तत् तत्कारणकं, यथा नक्तञ्चराणां मार्जारादीनां ज्ञानम्। तथा चेदं ज्ञानं, तस्मात्प्रकाशकारणकं न भवतीति भावः ॥७॥

विशेषार्थ—केश के होते हुये केश का ज्ञान होता तो कह सकते थे कि 'अर्थ' ज्ञान का कारण है। परन्तु ऐसा नहीं हो कर उल्टा ही होता है, कि जो पदार्थ (मच्छर) है नहीं, उसका तो ज्ञान होता है और जो केश हैं उनका ज्ञान नहीं होता। इसी को अन्वयव्यतिरेक का अभाव कहते हैं। इससे सिद्ध होता है कि अर्थ के साथ ज्ञान के अन्वय और व्यतिरेक दोनों ही नहीं हैं। इसलिये अर्थ ज्ञान का कारण नहीं है।

इसी प्रकार आलोक के होने पर उल्लू को ज्ञान नहीं होता और आलोक के नहीं होने पर भी रात्रि में ज्ञान होता है। इससे सिद्ध होता

कारण के होने पर कार्य का होना अन्वय कहलाता है और कारण के अभाव में कार्य के अभाव को व्यतिरेक कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है कि आलोक भी ज्ञान का कारण नहीं है। अगर आलोक ज्ञान का कारण होता तो रात्रि में उल्लू को ज्ञान कभी नहीं होता ॥७॥

ज्ञान के अर्थजन्यता और अर्थाकारता का खण्डन—

अतज्जन्यमपि तत्प्रकाशकं प्रदीपवत् ॥८॥

अर्थ—ज्ञान यद्यपि पदार्थों से उत्पन्न नहीं होता है तो भी पदार्थों को जानता है। जैसे दीपक घट पट आदि से उत्पन्न नहीं होता है, तो भी घट पट आदि को प्रकाशित करता है। इसी प्रकार ज्ञान, घटादिक के आकार नहीं होकर भी घटादिक को जानता है। जैसे दीपक घट के आकार को नहीं धारण करके भी घट को प्रकाशित करता है ॥ ८ ॥

संस्कृतार्थ—ननु विज्ञानम् अर्थजन्यं सत् अर्थस्य ग्राहकं भवति, तदुत्पत्तिमन्तरेण विषयं प्रति नियमायोगात्। इति चेन्न—घटाद्यजन्यस्यापि प्रदीपादेः घटादेः प्रकाशकत्ववत्, अर्थाजन्यस्यापि ज्ञानस्यार्थप्रकाशकत्वाभ्युपगमात्। एवमेव तदाकारत्वात् तत्प्रकाशकत्वमित्यप्ययुक्तम्—अतदाकारस्यापि प्रदीपादेः घटादिप्रकाशकत्वावलोकनात् ॥८॥

अतज्जन्य और अतदाकार होने पर भी
प्रतिनियतार्थ जानने का कारण—

स्वावरणक्षयोपशमलक्षणयोग्यतया हि प्रतिनियतमर्थं व्यवस्थापयति ॥९॥ प्रत्यक्षमिति शेषः ॥

अर्थ—अपने आवरणकर्म के क्षयोपशमरूपी योग्यता से प्रत्यक्ष प्रमाण 'यह घट है और यह पट है' इस प्रकार पदार्थों की जुदी-जुदी व्यवस्था करता है। अर्थात् ज्ञान के आवारक कर्म का क्षयोपशम जैसे-जैसे होता जाता है वैसे ही पदार्थ, ज्ञान का विषय होने लगता है ॥९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृतार्थ— स्वानि च तानि आवरणानि स्वावरणानि, तेषां क्षयः उदयाभावः, तेषामेव सदवस्थारूपः उपशमः, तावेव लक्षणं यस्याः योग्यतायाः, तया हेतुभूतया प्रतिनियतमर्थं व्यवस्थापयति (विषयीकरोति) प्रत्यक्षमिति शेषः। निष्कर्षश्चायम्—कल्पयित्वापि तदुत्पत्तिं, ताद्रूप्यं, तदध्यवसायं च प्रतिनियतार्थव्यवस्थापनार्थं योग्यतावश्यमभ्युपगन्तव्या ॥९॥

विशेषार्थ— ज्ञान को रोकने वाले कर्म बहुत और जुदे-जुदे हैं जिस वस्तु के ज्ञान को रोकने वाले कर्म का क्षयोपशयम हो जाता है वह पदार्थ ज्ञान का विषय होने लगता है। अर्थात् ज्ञान उसे ही जानने लगता है, दूसरे को नहीं। इससे सिद्ध हुआ कि ज्ञान स्वावरणक्षयोपशम से पदार्थों की जुदी-जुदी व्यवस्था करता है। ऐसी हालत में ज्ञान पदार्थों से उत्पन्न होता है यह मानने की कोई आवश्यकता नहीं ॥९॥

एक यह भी बात है कि यदि पदार्थों से ही ज्ञान की उत्पत्ति मानोगे तो जो वस्तु नष्ट हो चुकी है उसका ज्ञान भी नहीं होना चाहिये, किन्तु ऐसा होता नहीं है। मृत, सड़ी, गली और गुमी हुई वस्तुओं का ज्ञान होता ही है, इसलिये भी वस्तु से ज्ञान की उत्पत्ति मानना ठीक नहीं।

कारण होने से ज्ञेयरूपता मानने का निराकरण—

कारणस्य च परिच्छेद्यत्वे करणादिना व्यभिचारः ॥१०॥

बौद्ध शंका करता है कि—जब ज्ञान किसी पदार्थ से नहीं उत्पन्न होकर भी पदार्थों को जानता है, तो एक ही ज्ञान सब पदार्थों को क्यों नहीं जान लेता ? इसका निषेधक कौन है ? हम (बौद्धों) के यहाँ तो 'जो ज्ञान जिस पदार्थ से उत्पन्न होगा, वह ज्ञान उसी पदार्थ को जानेगा अन्य को नहीं' इस नियम से काम चल जाता है। इस शंका के उत्तर में यह नवम सूत्र कहा गया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—'जो पदार्थ ज्ञान का कारण है वह ही ज्ञान का विषय होता है' यदि ऐसा माना जायगा तो इन्द्रियों के साथ व्यभिचार नाम का दोष आवेगा। क्योंकि इन्द्रियाँ ज्ञान की कारण तो हैं, परन्तु विषय नहीं हैं। अर्थात् अपने आप को नहीं जानती हैं।

संस्कृतार्थ—यद्यत्कारणं तत्तत्प्रमेयम् इति व्याप्तिस्वीकारे तु इन्द्रियादिना व्यभिचारः संजायेत। चक्षुरादीनां ज्ञानम्प्रति कारणत्वेऽपि परिच्छेद्यत्वाभावात् ॥१०॥

विशेषार्थ— बौद्धों का कहना है कि जो-जो ज्ञान का कारण होता है वह-वह ही ज्ञान का विषय होता है। इस अनुमान में कारण होना हेतु है और विषय होना साध्य है। इन्द्रियों में हेतुत्व तो रह गया क्योंकि वे ज्ञान में कारण हैं; परन्तु साध्यत्व 'विषय होना' नहीं रहा। क्योंकि ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो अपनी इन्द्रियों से अपनी ही इन्द्रियों को जान लेवे। इस प्रकार इन्द्रियों के साथ व्यभिचार दोष आता है ॥१०॥

पारमार्थिकप्रत्यक्षलक्षणम्, पारमार्थिकप्रत्यक्ष का लक्षण—

सामग्रीविशेषविश्लेषिताखिलावरणमतोन्द्रियमशेषतो मुख्यम् ॥११॥

अर्थ— द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव रूप सामग्री की पूर्णता (एकता या मिलना) से दूर हो गये हैं समस्त आवरण जिसके ऐसे, इन्द्रियों की सहायता से रहित और पूर्णतया विशद ज्ञान को मुख्य-प्रत्यक्ष कहते हैं ॥११॥

संस्कृतार्थ—सामग्री द्रव्यक्षेत्रकालभावलक्षणा, तस्याः विशेषः समग्रतालक्षणः, तेन विश्लेषितान्यखिलान्यावरणानि येन तत्तथोक्तम्, इन्द्रियाण्यतिक्रान्तम् अतीन्द्रियम्। तथा च यज्ज्ञानं सामग्रीविशेषनिरा-

---

हेतु रहकर साध्य के न रहने को व्यभिचार दोष कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्षतसमस्तज्ञानावरणादिकर्मत्वात् इन्द्रियागोचरत्वाच्च साकल्येन निर्मलं जायते तन्मुख्यप्रत्यक्षं पारमार्थिकप्रत्यक्षं वा प्रोच्यते इति भावः ॥

पारमार्थिकप्रत्यक्ष के पूर्ण वैशद्य में हेतु—

सावरणत्वे करणजन्यत्वे च प्रतिबन्धसम्भवात् ।१२।

अर्थ—जिस ज्ञान के आवरणसहितपना और इन्द्रियजन्यपना होता है उसमें प्रतिबन्ध (व्याघात) सम्भव होता है इसलिये जो निरावरण और अतीन्द्रिय होता है वही मुख्य प्रत्यक्ष है ॥१२॥

संस्कृतार्थ—सावरणत्वे करणजन्यत्वे च सत्येव ज्ञाने प्रतिबन्धः सम्भवति। अतो यज्ज्ञानं निरावरणमतीन्द्रियं वा जायते तदेव मुख्यप्रत्यक्षमवगन्तव्यम् ॥१२॥

विशेषार्थ—जिस ज्ञान को रोकने वाला कर्म मौजूद रहता है या जो इन्द्रियों की सहायता से उत्पन्न होता है उस ज्ञान में मूर्त पदार्थ से रुकावट सम्भव होती है। जैसे जब हम अपने इन्द्रियजन्य ज्ञान से किसी पदार्थ को जानना चाहते हैं तो वहीं तक जान सकते हैं जहाँ तक के जानने की हमारी इन्द्रियों में शक्ति है। अथवा वहीं तक जान सकते हैं जहाँ तक कि कोई दीवाल वगैरह रोकने वाला नहीं होता। तात्पर्य यह है कि जिसका कोई भी रोकने वाला नहीं है वही ज्ञान मुख्य प्रत्यक्ष है।

इति द्वितीयः परिच्छेदः समाप्तः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ तृतीयः परिच्छेदः

परोक्षस्य लक्षणं निर्णयो वा, परोक्ष का लक्षण या निर्णय—

परोक्षमितरत् ॥१॥

अर्थ—प्रत्यक्ष प्रमाण से भिन्न सर्व प्रमाण परोक्ष हैं। अर्थात् अविशदज्ञान को परोक्ष कहते हैं ॥१॥

संस्कृतार्थ—अविशदं परोक्षम्। अथवा यस्य ज्ञानस्य प्रतिभासो निर्मलो न भवति तत्परोक्षं कथ्यते ॥१॥

परोक्षस्य कारणं भेदाश्च, परोक्ष के कारण और भेद—

प्रत्यक्षादिनिमित्तं स्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानागमभेदम् ।

अर्थ—परोक्ष के (परोक्ष प्रमाण के) प्रत्यक्ष और स्मृति आदिक कारण हैं। तथा परोक्ष के स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम ये पाँच भेद हैं। स्मृति आदिक सभी आगे-आगे कारण हैं और प्रत्यक्ष भी उनका कारण है ॥२॥

संस्कृतार्थ—प्रत्यक्षादयः षट् परोक्षस्य कारणानि विद्यन्ते। तथा स्मृतिः, प्रत्यभिज्ञानं, तर्कः, अनुमानम्, आगमश्चेति पञ्च तस्य भेदाः सन्ति ॥२॥

विशेषार्थ—स्मरण, पहले धारणारूप अनुभव (प्रत्यक्ष) हुए पदार्थ का ही होता है इसलिये प्रत्यक्ष स्मरण का निमित्त है। प्रत्यभिज्ञान में स्मरण और प्रत्यक्ष की आवश्यकता पड़ती है, क्योंकि जिस पदार्थ को पहले देखा था उसी को फिर देख कर 'यह वही है जिसको मैंने पहले देखा था' ऐसा जो ज्ञान होता है उसी को प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। इसमें स्मरण की और पुनर्दर्शन वाले प्रत्यक्ष की आवश्यकता होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तर्कप्रमाण में प्रत्यक्ष, स्मृति और प्रत्यभिज्ञान तीनों की आवश्यकता होती है। जैसे अपने शिष्य के साथ भ्रमणार्थ गये किसी विद्वान् ने पहाड़ में धूम देखा और शिष्य से कहा कि तुम्हें याद है ? तुम अपने रसोईघर में रोज देखते हो कि जब धूम होता है तब अवश्य ही अग्नि होती है ? यह सुन कर वह अपने रसोईघर वाले धूम और अग्नि का स्मरण करता है और कहता है कि हाँ गुरुजी यह धूम उसी के समान है। इस दृष्टान्त में पहले धूम का प्रत्यक्ष हुआ, पीछे स्मरण हुआ, और फिर सादृश्य प्रत्यभिज्ञान हुआ। इसके बाद वह निश्चय करके कहता है कि जब ऐसा है तो जहाँ धूम होगा वहाँ अग्नि अवश्य होगी, क्योंकि बिना अग्नि के धुआँ हो नहीं सकता। इसी को व्याप्तिज्ञान या तर्क कहते हैं। इसमें प्रत्यक्षादि तीनों की आवश्यकता होती है।

तर्कप्रमाण के बाद वह शिष्य अनुमान करता है कि इस पर्वत में अग्नि है, क्योंकि यहाँ धूम है। इसमें तर्कसहित चार प्रमाण निमित्त होते हैं।

आगमप्रमाण में संकेतग्रहण (यह शब्द इस अर्थ को कहता है) और उसका स्मरण यह दोनों ही कारण होते हैं।

तात्पर्य यह है कि इन पाँचों ही प्रमाणों में दूसरे पूर्व प्रमाणों की आवश्यकता होती है, इसलिये इन्हें परोक्ष प्रमाण कहते हैं ॥२॥

स्मृतिप्रमाणलक्षणकारणे, स्मृतिप्रमाण के लक्षण वा कारण—

संस्कारोद्बोधनिबन्धना तदित्याकारा स्मृतिः ।३।

अर्थ—संस्कार (धारणा रूप अनुभव) की प्रगटता से होने वाले तथा तत् (वह) आकार वाले ज्ञान को स्मृति कहते हैं ॥३॥

संस्कृतार्थ—संस्कारस्य उद्बोधः (प्राकट्यं) सः निबन्धनं यस्याः सा तथोक्ता। या धारणाख्यसंस्कारप्राकट्यकारणिका तदित्युल्लेखिनी च जायते सा स्मृतिः निगद्यते ॥३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्मृतेः दृष्टान्तः, स्मृति का दृष्टान्त—

स देवदत्तो यथा ।। ४ ।।

अर्थ—जैसे वह देवदत्त ।

विशेषार्थ—देवदत्त को पहिले देखा था और धारणा भी कर ली थी, इसके बाद फिर कभी मन में याद आया कि 'वह देवदत्त' । इसी को स्मृति कहते हैं ।

प्रत्यभिज्ञान का स्वरूप वा कारण—

दर्शनस्मरणकारणकं संकलनं प्रत्यभिज्ञानम् । तदेवेदं, तत्सदृशं, तद्विलक्षणं, तत्प्रतियोगीत्यादि ।। ५ ।।

अर्थ—वर्तमान का प्रत्यक्ष और पूर्वदर्शन का स्मरण है कारण जिसमें ऐसे जोड़रूप (मिले हुए) ज्ञान को प्रत्यभिज्ञान कहते हैं । उसके एकत्व, सादृश्य, वैलक्षण्य और प्रातियोगिक ये चार भेद हैं । १—यह वही है । २—यह उसके समान है । ३—यह उससे विलक्षण है । और ४—यह उसका प्रतियोगी है । उन चारों में क्रमशः इस प्रकार प्रतिभास होता है ।। ५ ।।

संस्कृतार्थ—दर्शनं च स्मरणं च दर्शनस्मरणे, ते कारणे यस्य तत्तथोक्तम् । तथा च - दर्शनस्मरणहेतुकत्वे सति संकलनात्मकज्ञानत्वं प्रत्यभिज्ञानत्वम् । तच्चैकत्वं, सादृश्यं, वैलक्षण्यं, प्रातियोगिकञ्चेति चतुर्विधम् । तदेवेदमित्येकत्वप्रत्यभिज्ञानम् । तत्सदृशमिति सादृश्यप्रत्यभिज्ञानम् । तद्विलक्षणमिति वैलक्षण्यप्रत्यभिज्ञानम् । तत्प्रतियोगीति प्रातियोगिकप्रत्यभिज्ञानम् ।। ५ ।।

विशेषार्थ—वर्तमान में किसी वस्तु को देखकर और उसे ही पहले देखा था उसकी याद कर 'यह वही है' ऐसा जानना एकत्वप्रत्यभिज्ञान है । वर्तमान में किसी वस्तु को देखकर उसके समान वस्तु पहले देखी थी उसकी याद कर 'यह उसके समान है' ऐसा जानना सादृश्यप्रत्यभिज्ञान है । वर्तमान में किसी वस्तु को देखकर उससे विलक्षण वस्तु पहिले देखी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थी उसका स्मरण कर यह उससे विलक्षण है, ऐसा जानना वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञान है। और पहिले देखा था उसके वर्तमान में प्रतियोगी (जिससे अवश्य जोड़ मिल जाय) अन्य पदार्थ को देखकर 'यह उसका प्रतियोगी है', ऐसा जानना प्रातियौगिक प्रत्यभिज्ञान है। इसी प्रकार अन्य दृष्टान्त भी जानना ॥ ५ ॥

प्रत्यभिज्ञानदृष्टान्ताः, प्रत्यभिज्ञान के दृष्टान्त—

यथा स एवायं देवदत्तः, गोसदृशो गवयः, गोविलक्षणो महिषः, इदमस्माद्दूरम्, वृक्षोऽयमित्यादि ॥ ६ ॥

अर्थ—जैसे—१ यह वही देवदत्त है। २—यह रोझ उस गौ के समान है। ३— यह भैंसा उस गौ से विलक्षण (भिन्न) ही है। ४— यह प्रदेश उस प्रदेश से दूर है, यह वही वृक्ष है, इत्यादि। ये क्रम से एकत्वादि प्रत्यभिज्ञानों के दृष्टान्त हैं ॥ ६ ॥

संस्कृतार्थ—एकत्वप्रत्यभिज्ञानस्य स एवायं देवदत्तः, सादृश्यप्रत्यभिज्ञानस्य गोसदृशो गवयः। वैलक्षण्यप्रत्यभिज्ञानस्य गोविलक्षणो महिषः, प्रातियौगिकप्रत्यभिज्ञानस्य इदमस्माद्दूरमिति क्रमशः दृष्टान्ता विज्ञेयाः (प्रत्येतव्याः) ॥ ६ ॥

विशेषार्थ—जैसे किसी ने किसी पुरुष को देखकर जाना कि 'यह वही पुरुष है जिसे पहिले देखा था' यह एकत्वप्रत्यभिज्ञान का दृष्टान्त है। किसी ने वन में रोझ को देखकर जाना कि जो गाय पहिले देखी थी यह रोझ उसके समान है, यह सादृश्य प्रत्यभिज्ञान का उदाहरण है। भैंसा को देखकर यह जाना कि जो गाय पहिले देखी थी यह भैंसा उससे विलक्षण है, यह वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञान का दृष्टान्त है। किसी वस्तु को निकट देख कर अन्य किसी को इस प्रकार जाना कि 'यह इससे दूर है, यह प्रातियौगिक प्रत्यभिज्ञान का उदाहरण है। और किसी वृक्ष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को देखकर वृक्षसामान्य की संज्ञा को याद कर जानना कि 'यह वृक्ष है' यह सामान्य प्रत्यभिज्ञान का दृष्टान्त है। प्रमेयरत्नमाला ग्रन्थ से और भी दृष्टान्त समझ लेना चाहिये ॥ ६ ॥

तर्कप्रमाणकारणलक्षणे, तर्कप्रमाण के कारण और लक्षण—

उपलम्भानुपलम्भनिमित्तं व्याप्तिज्ञानमूहः ॥ ७ ॥

अर्थ—साध्य और साधन का निश्चय और अनिश्चय है कारण जिसमें ऐसे व्याप्ति के ज्ञान को तर्क कहते हैं॥ ७ ॥

संस्कृतार्थ— उपलम्भश्चानुपम्भश्च उपलम्भानुपलम्भौ निश्चयानिश्चयावित्यर्थः, तौ निमित्तं यस्य तत् उपलम्भानुपलम्भनिमित्तम्। तथा च साध्यसाधनविषयिकनिश्चयानिश्चयहेतुकत्वे सति व्याप्तिज्ञानत्वं तर्कत्वम् ॥ ७ ॥

विशेषार्थ—साध्य और साधन का निश्चय और अनिश्चय क्षयोपशम के अनुकूल होता है ॥ ७ ॥

व्याप्तिज्ञानप्रवृत्तिप्रकारः, व्याप्तिज्ञान की प्रवृत्ति का प्रकार—

इदमस्मिन्सत्येव भवत्यसति तु न भवत्येव ॥ ८ ॥

यथाऽग्नावेव धूमस्तदभावे न भवत्येवेति च ॥ ९ ॥

अर्थ—यह साधनरूप वस्तु, इस साध्यरूप वस्तु के होने पर ही होती है और साध्यरूप वस्तु के नहीं होनेपर साधनरूप वस्तु नहीं होती। जैसे कि अग्नि के होने पर ही धूम होता है और अग्नि के नहीं होने पर धूम नहीं होता ॥ ८ ॥ ९ ॥

संस्कृतार्थ—स च तर्कः इदमस्मिन् सत्येव भवति असति तु न भवति इत्येवंरूपः प्रवर्तते, यथा वह्नौ सत्येव धूमः उपलभ्यते, वह्न्यभावे तु नैवोपलभ्यते ॥ ८ ॥ ९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुमानकारणस्वरूपे, अनुमान का कारण और स्वरूप—

साधनात् साध्यविज्ञानमनुमानम् ॥ १० ॥

अर्थ—साधन से होने वाले साध्य के ज्ञान को अनुमान कहते हैं ॥१०॥

संस्कृतार्थ— साधनाद् धूमादेः लिङ्गात्साध्येऽग्न्यादौ लिङ्गिनि यद्विज्ञानं जायते तदनुमानं, तस्यैवाग्न्याद्यव्युत्पत्तिविच्छित्तिकरणत्वात् । साधनाज्जायमानं साध्यविज्ञानमेवानुमानमिति भावः ॥ १० ॥

हेतो र्लक्षणम्, हेतु (साधन) का लक्षण—

साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुः ॥ ११ ॥

अर्थ—जिसका साध्य के साथ अविनाभाव निश्चित होता है, अर्थात् जो साध्य के बिना नहीं हो सकता उसे हेतु कहते हैं ॥ ११ ॥

संस्कृतार्थ—निश्चितसाध्यान्यथानुपपत्तिकं साधनम् । यस्य साध्याभावासम्भवनियमरूपा व्याप्त्यविनाभावाद्यपरपर्याया साध्यान्यथानुपत्तिस्तर्काख्येन प्रमाणेन निर्णीता तत्साधनमित्यर्थः ॥ ११ ॥

अविनाभावलक्षम्, अविनाभाव का लक्षण—

सहक्रमभवनियमो ऽविनाभावः ॥ १२ ॥

अर्थ—साध्य और साधन का एक साथ एक समय होने का नियम सहभावनियम अविनाभाव कहलाता है और काल के भेद से साध्य और साधन का क्रम से होने का नियम क्रमभाव नियम अभिनाभाव कहलाता है ॥ १२ ॥

संस्कृतार्थ—साध्यसाधनयोः साहचर्यनियमः, क्रमवर्तित्वनियमो वा अविनाभावः प्रोच्यते । सहभावनियमः, क्रमभावनियमश्चेति द्वौ तस्याविनाभावस्य भेदौ स्तः ॥ १२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहभावनियमलक्षणम्, सहभावनियम का लक्षण—

सहचारिणो र्व्याप्यव्यापकयोश्च सहभावः ॥ १३ ॥

अर्थ—सदा साथ रहने वालों, तथा व्याप्य और व्यापक में जो अविनाभाव सम्बन्ध होता है उसे सहभावनियम नामक अविनाभाव-सम्बन्ध कहते हैं ॥ १३ ॥

संस्कृतार्थं—सहचारिणो र्व्याप्यव्यापकयोश्चाविनाभावः सहभाव-नियमाविनाभावः प्रोच्यते । यथा रूपरसयो र्व्याप्यव्यापकयोश्च सहभाव-नियमो ऽविनाभावो विद्यते ॥ १३ ॥

विशेषार्थं—रूप और रस सदा साथ रहते हैं । वृक्षत्व व्यापक है और शिंशपात्व व्याप्य है । जो अधिक देश में रहता है वह व्यापक कह-लाता और जो स्वल्पदेश में रहता है वह व्याप्य कहलाता है ॥ १३ ॥

क्रमभावनियमलक्षणम्, क्रमभावनियम का लक्षण—

पूर्वोत्तरचारिणोः कार्यकारणयोश्च क्रमभावः ॥ १४ ॥

अर्थ—पूर्वचर और उत्तरचर में तथा कार्य और कारण में जो अविनाभाव सम्बन्ध होता है उसे क्रमभावनियम अविनाभाव सम्बन्ध कहते हैं ॥ १४ ॥

संस्कृतार्थं—पूर्वोत्तरचारिणोः कार्यकारणयोश्चाविनाभावः क्रम-भावनियमाविनाभावः प्रोच्यते । यथा कृतिकोदयशकटोदययोः धूमानल-योश्च क्रमभावनियमोऽविनाभावो विद्यते ॥ १४ ॥

विशेषार्थं—कृतिका का उदय अन्तर्मुहूर्त पहले होता है और रोहिणी का उदय पीछे होता है, इसलिये इन दोनों में क्रमभाव माना जाता है । इसी प्रकार अग्नि के बाद में धूम होता है, इसलिये अग्नि और धूम में भी क्रमभाव अविनाभाव संबंध माना जाता है । इसका दूसरा नाम 'अन्तरभावनियम' भी है ॥ १४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्याप्तिज्ञाननिर्णयकारणम्, व्याप्तिज्ञान के निर्णय का कारण—

तर्कात्तन्निर्णयः ॥ १५ ॥

अर्थ—व्याप्ति (अविनाभावसम्बन्ध) का निर्णय तर्कप्रमाण से होता है ॥ १५ ॥

संस्कृतार्थ—स हि अविनाभावस्तर्कप्रमाणादेव निश्चीयते ।

विशेषार्थ—जहाँ जहाँ साधन होता है वहाँ वहाँ साध्य का रहना और जहाँ जहाँ साध्य नहीं होता वहाँ वहाँ साधन का नहीं रहना । इस प्रकार के अविनाभाव का निश्चय तर्क प्रमाण से ही होता है, अन्य प्रमाण से नहीं ।

जैनेतर किसी भी मत ने तर्कप्रमाण नहीं माना है । इसलिये सभी की मानी प्रमाणसंख्या झूठी ठहरती है । क्योंकि प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति तथा अभाव किसी भी प्रमाण से व्याप्ति का निर्णय नहीं हो सकता । इसलिये तर्कप्रमाण सभी को मानना पड़ेगा, तब उनके द्वारा मानी हुई प्रमाणसंख्या कैसे ठीक रहेगी ? प्रत्यक्षादि प्रमाणों से व्याप्ति का निर्णय नहीं होता, यह न्याय के अन्य ग्रन्थों से जानना चाहिये ॥ १५ ॥

साध्यस्वरूपम्, साध्य का स्वरूप—

इष्टमबाधितमसिद्धं साध्यम् ॥ १६ ॥

अर्थ—जो वादी को इष्ट (अभिप्रेत), प्रत्याक्षादि प्रमाणों से अबाधित और असिद्ध होता है उसे साध्य कहते हैं ।

संस्कृतार्थ—यद् वादिनः साधयितुमिष्टं, प्रत्यक्षादिप्रमाणैरबाधितं, संशयाद्याक्रान्तं च विद्यते तत्साध्यं प्रोच्यते ॥ १६ ॥

विशेषार्थ—इष्ट, अबाधित और असिद्ध ये तीन साध्य के विशेषण हैं ॥ १६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साध्य के लक्षण में असिद्ध विशेषण का फल—

संदिग्धविपर्यस्ताव्युत्पन्नानां साध्यत्वं यथा स्यादित्यसिद्धपदम् ॥१७॥

अर्थ—संदिग्ध, विपर्यस्त और अव्युत्पन्न पदार्थों के साध्यता साबित करने के लिये साध्य के लक्षण में असिद्ध पद दिया गया है।१७।

संस्कृतार्थ—संशयविपर्ययानध्यवसायगोचराणां पदार्थानां साध्यत्वसंकल्पनार्थं साध्यलक्षणेऽसिद्धपदमुपादीयते ॥१७॥

विशेषार्थ—संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय रहित वस्तु स्वयं सिद्ध होती है, उसके सिद्ध करने का प्रयास मूर्खता और पिष्टपेषण ही है। इसलिये जिसमें संशयादि हों उसे ही सिद्ध करना उचित है, इस बात को बतलाने के लिये साध्य के लक्षण में असिद्ध पद दिया गया है। ॥१७॥

साध्य के लक्षण में इष्ट और अबाधित पद का सार्थक्य—

अनिष्टाध्यक्षादिबाधितयोः साध्यत्वं मा भूदितीष्टाबाधितवचनम् ॥१८॥

अर्थ—अनिष्ट तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणों से बाधित पदार्थों के साध्य पने का निषेध करने के लिये साध्य को इष्ट तथा अबाधित विशेषण दिये गये हैं ॥१८॥

संस्कृतार्थ—अनिष्टस्य प्रत्यक्षादिबाधितस्य च पदार्थस्य साध्यत्वनिरासार्थम् इष्टाबाधितपदयोरुपादनं कृतम् ॥१८॥

विशेषार्थ—जिस वस्तु को वादी सिद्ध नहीं करना चाहता है उसे अनिष्ट कहते हैं। उसे सिद्ध करने का प्रयास अप्राकरणिक और असामयिक होता है। इसलिये ऐसी वस्तु साध्य नहीं हो सकती। इसी बात

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को स्पष्ट करने के लिये साध्य के लक्षण में इष्ट विशेषण दिया गया है।

जिस पदार्थ को हम सिद्ध करना चाहते हैं वह कदाचित् दूसरे प्रमाण से बाधित हो तो प्रमाणान्तर उसे सिद्ध नहीं कर सकता। इसलिये जो किसी दूसरे प्रमाण से बाधित होगा वह भी साध्य नहीं हो सकता। इस बात को स्पष्ट करने के लिये साध्य के लक्षण में अबाधित वचन दिया गया है। वह बाधित प्रत्यक्ष से, अनुमान से, आगम से, लोक से तथा स्ववचन से इत्यादि अनेक प्रकार का होता है ॥१८॥

साध्य का इष्टविशेषण वादी की अपेक्षा होने का स्पष्टीकरण—

न चासिद्धवदिष्टं प्रतिवादिनः ॥१९॥

अर्थ—जिस प्रकार असिद्ध विशेषण प्रतिवादी की अपेक्षा से है; उस प्रकार इष्टविशेषण प्रतिवादी की अपेक्षा नहीं है, किन्तु वादी की अपेक्षा से है ॥१९॥

संस्कृतार्थ—न हि सर्वं सर्वापेक्षया विशेषणमपि तु किञ्चित्किम-प्युद्दिश्य भवतीति। असिद्धवदिति व्यतिरेकमुखेनोदाहरणम्। यथा असिद्धविशेषणं प्रतिवाद्यपेक्षया प्रोक्तं न तथा इष्टविशेषणमिति भावः ॥१९॥

विशेषार्थ—पहले पक्षस्थापन करने वाले को वादी कहते हैं और जो पीछे निराकरणार्थ उत्तर देता है उसे प्रतिवादी कहते हैं।

इष्टविशेषण वादी की अपेक्षा होने का कारण—

प्रत्यायनाय हीच्छा वक्तुरेव ॥२०॥

अर्थ—दूसरों को समझाने की इच्छा वादी के ही होती है प्रतिवादी के नहीं। इसलिये जब साध्य को सिद्ध करना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वादी को ही इष्ट होता है तो इष्ट विशेषण वादी की ही अपेक्षा है, प्रतिवादी की अपेक्षा नहीं ॥ २० ॥

संस्कृतार्थ—साध्यप्रज्ञापनविषयिणी इच्छा वादिन एव भवति न तु प्रतिवादिनः । अतः साध्ये इष्टविशेषणं वादिनः अपेक्षातः एव विद्यते ॥ २० ॥

साध्यस्य निर्णयः, साध्य का निर्णय—

साध्यं धर्मः क्वचित्तद्विशिष्टो वा धर्मी ॥ २१ ॥

अर्थ—व्याप्तिप्रयोग के समय 'धर्म' साध्य होता है और अनुमानप्रयोग के समय 'धर्म से युक्त धर्मी' भी साध्य होता है ॥ २१ ॥

संस्कृतार्थ—व्याप्तिकालापेक्षया धर्म एव साध्यो भवति । परन्तु अनुमानप्रयोगापेक्षया धर्मविशिष्टो धर्मी साध्यत्वेन प्रयुज्यते ॥ २१ ॥

धर्मिणो नामान्तरम्, धर्मी का नामान्तर—

पक्ष इति यावत् ॥ २२ ॥

अर्थ—उसी धर्मी को पक्ष भी कहते हैं। पक्ष इति धर्मिणः एव नामान्तरम् ॥ २२ ॥

पक्ष की प्रसिद्धता या लक्षण—

प्रसिद्धो धर्मी ॥ २३ ॥

अर्थ—धर्मी (पक्ष) प्रसिद्ध होता है। अवस्तुस्वरूप या कल्पित नहीं ॥ २३ ॥

संस्कृतार्थ—धर्मी (पक्षः) प्रसिद्धो विद्यते, अवस्तुस्वरूपः, कल्पितो वा नो विद्यते ॥ २३ ॥

विशेषार्थ—धर्मी (पक्ष) की प्रसिद्धि तीन तरह से होती है। प्रमाण से, विकल्प से और प्रमाणविकल्प से ॥ २३ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विकल्पसिद्ध धर्मी में साध्य का नियम—

विकल्पसिद्धे तस्मिन् सत्तेतरे साध्ये ॥ २४ ॥

अर्थ-उस धर्मी के विकल्पसिद्ध होने पर सत्ता (अस्तित्व या मौजूदगी) और असत्ता (गैरमौजूदगी) दोनों साध्य होते हैं ॥ २४ ॥

संस्कृतार्थ—तस्मिन् धर्मिणि विकल्पसिद्धे सति अस्तित्वं नास्तित्वं चेत्युभे साध्ये भवतः ॥ २४ ॥

विशेषार्थ—जिस पक्ष का न तो किसी प्रमाण से अस्तित्व सिद्ध हो और न नास्तित्व सिद्ध हो उस पक्ष को विकल्पसिद्ध कहते हैं। यही न्यायदीपिका में कहा है कि—अनिश्चितप्रामाण्याप्रामाण्यगोचरत्वं विकल्पसिद्धत्वम् ॥ २४ ॥

विकल्पसिद्ध धर्मी का उदाहरण—

अस्ति सर्वज्ञो, नास्ति खरविषाणम् ॥ २५ ॥

अर्थ—सर्वज्ञ है और गधे के सींग नहीं हैं ॥ २५ ॥

संस्कृतार्थ—सर्वज्ञोऽस्ति, सुनिश्चितासम्भवद्बाधकप्रमाणत्वात्। खरविषाणं नास्ति, अनुपलब्धेः ॥ २५ ॥

विशेषार्थ— सर्वज्ञ है, यहाँ सर्वज्ञ पक्ष (धर्मी) विकल्पसिद्ध है, उसकी सत्ता साध्य है। और खरविषाण नहीं है, यहाँ गधे के सींग विकल्पसिद्ध धर्मी हैं, उनकी असत्ता साध्य है।

प्रमाणसिद्ध धर्मी और विकल्पसिद्ध धर्मी में साध्य—

प्रमाणोभयसिद्धे तु साध्यधर्मविशिष्टता साध्या ॥ २६ ॥

अर्थ—प्रमाणसिद्ध धर्मी में और प्रमाणविकल्पसिद्धधर्मी में धर्म-सहित धर्मी साध्य होता है ॥ २६ ॥

संस्कृतार्थ—प्रमाणसिद्धे उभयसिद्धे वा धर्मिणि साध्यधर्मविशिष्टतैव साध्या भवति ॥ २६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमाणसिद्ध और विकल्पसिद्ध धर्मी के दृष्टान्त—

अग्निमानयं देशः, परिणामी शब्दः इति यथा ।।२७।।

अर्थ—जैसे यह प्रदेश अग्निसहित है, यह प्रत्यक्षप्रमाण-सिद्ध धर्मी का उदाहरण है। क्योंकि पर्वत आदि प्रदेश प्रत्यक्ष आदि प्रमाण से सिद्ध रहते हैं और शब्द परिणमनशील हैं, यह प्रमाणविकल्प-सिद्ध धर्मी का उदाहरण है। क्योंकि यहाँ शब्द (पक्ष) वर्तमानकाल वाला तो प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है और भूत तथा भविष्यत् शब्द विकल्पसिद्ध हैं ।।२७।।

संस्कृतार्थ—'अग्निमानयं प्रदेशः धूमवत्वात्' इति प्रमाणसिद्ध-धर्मिणः उदाहरणम्। यतः पर्वतादिप्रदेशाः प्रत्यक्षादिप्रमाणैः सिद्धाः विद्यन्ते। तथा च 'शब्दः परिणामी, कृतकत्वात्' इति प्रमाणविकल्प-सिद्धधर्मिणः उदाहरणम्। यतः अत्र धर्मी शब्दः उभयसिद्धो विद्यते। स हि वर्तमानकालिकः प्रत्यक्षगम्यः, भूतो, भविष्यंश्च विकल्पगम्यो वर्तते ।।२७।।

व्याप्तिकाले साध्यनियमः व्याप्तिकाल में साध्य का नियम—

व्याप्तौ तु साध्यं धर्म एव ।।२८।।

अर्थ—व्याप्ति के काल में धर्म ही साध्य होता है, धर्मविशिष्ट धर्मी नहीं।

संस्कृतार्थ—व्याप्तिकालापेक्षया साध्यं धर्म एव भवति, न तु साध्यविशिष्टो धर्मीति भावः ।।२८।।

व्याप्तिकाल में धर्मी को साध्य मानने से हानि—

अन्यथा तदघटनात् ।।२९।।

अर्थ—धर्मी को साध्य करने से धर्मी और साधन की व्याप्ति नहीं बन सकेगी।

संस्कृतार्थ—व्याप्तिकालेऽपि धर्मिणः साध्यत्वे धर्मिसाधनयोः व्याप्त्यघटनात् ।।२९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—जहाँ-जहाँ धूम होता है वहाँ-वहाँ पर्वत ही अग्नि वाला हो, सो तो ठीक नहीं, किन्तु कहीं पर्वत रहेगा, कहीं रसोईघर रहेगा और कहीं तेल का मिल रहेगा, इसलिये व्याप्ति-काल में धर्मविशिष्ट धर्मी (पक्ष) साध्य नहीं हो सकता ॥२८॥

पक्ष का प्रयोग करने की आवश्यकता—

साध्यधर्माधारसन्देहापनोदाय गम्यमानस्यापि पक्षस्य वचनम् ॥३०॥

अर्थ—साध्य रूप धर्म के आधार के विषय में उत्पन्न हुये सन्देह को दूर करने के लिये स्वतः सिद्ध भी पक्ष का प्रयोग किया जाता है ॥३०॥

संस्कृतार्थ—साध्यरूपधर्माधिकरणसमुत्पन्नसंशयनिवारणाय स्वयं-सिद्धस्यापि पक्षस्य प्रयोगः आवश्यकः ॥३०॥

विशेषार्थ—साध्य, बिना आश्रय के रह नहीं सकता, इसलिये साध्य के बोलने से ही पक्ष सिद्ध हो जावेगा फिर पक्ष के प्रयोग की आवश्यकता नहीं। इस शंका का उत्तर इस सूत्र के द्वारा दिया गया है कि- यद्यपि साध्य के कहने मात्र से ही पक्ष उपस्थित हो जाता है तथापि उस पक्ष में सन्देह दूर करने के लिये स्वयं सिद्ध भी पक्ष का प्रयोग किया जाता है।

जैसे 'अग्निमत्त्व' साध्य की सिद्धि करते समय पर्वत, रसोई घर या तेल का कारखाना आदि जगह में उसके रहने का सन्देह होता है, क्योंकि उक्त तीनों जगह 'अग्निमत्त्व' रह सकता है। अतः 'अग्निमत्त्व' साध्य वास्तव में कहाँ साधना है इसका निश्चय करने के लिये ही पक्ष का प्रयोग (उच्चारण) होता है ॥३०॥

पक्ष का प्रयोग करने की आवश्यकता का दृष्टान्त—

साध्यधर्मिणि साधनधर्मावबोधनाय पक्षधर्मोपसंहारवत् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ जैसे साध्ययुक्त धर्मी में साधनरूप धर्म को समझाने के लिये उपनय का प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार साध्य कहां साधना इष्ट है इसका निश्चय करने के लिये ही पक्ष का भी प्रयोग होता है ॥ ३१ ॥

संस्कृतार्थ--साध्यव्याप्तसाधनप्रदर्शनेन तदाधारावगतावपि नियत-धर्मिसम्बन्धिताप्रदर्शनार्थं यथोपनयः प्रयुज्यते तथा साध्यस्य विशिष्ट-धर्मिसम्बन्धितावबोधनार्थं पक्षोऽपि प्रयोक्तव्यः।

विशेषार्थ—इस स्थान में अग्नि है क्योंकि धूम है। जहाँ-जहाँ धूम होता है वहाँ-वहाँ अवश्य अग्नि होती है। जैसे—रसोईघर। इस प्रकार साध्य (अग्नि) के साथ व्याप्ति रखने वाले, साधन (धूम) को दिखाने से ही, उन (साध्य साधन) का आधार (पक्ष) मालूम हो जाता है। क्योंकि वे बिना आधार के नहीं रह सकते। ऐसी हालत में आगे जाकर 'जैसा रसोईघर धूम वाला है उसी तरह पर्वत भी धूम वाला है' यह उपनय (पक्ष में दुबारा धूम का प्रदर्शन) इसीलिये प्रयुक्त किया जाता है कि निश्चित पक्ष में साधन मालूम हो जावे। इसीलिये इसी प्रकार स्वतः सिद्ध होने पर भी पक्ष का प्रयोग किया जाता है ॥ ३१ ॥

पक्ष के प्रयोग की आवश्यकता की पुष्टि—

को वा त्रिधा हेतुमुक्त्वा समर्थयमानो न पक्षयति ॥ ३२ ॥

अर्थ—ऐसा कौन वादी प्रतिवादी है जो तीन प्रकार के हेतु को कह कर उसका समर्थन करता हुआ उस हेतु को पक्ष नहीं मानेगा ॥ ३२ ॥

संस्कृतार्थ—को वा वादी प्रतिवादी त्रिविधं हेतुं स्वीकृत्य तत्स-मर्थनं च कुर्वाणः पक्षवचनं न स्वीकरोति ? अपि तु स्वीकरोत्येव ॥ ३२ ॥

विशेषार्थ—दोषों का परिहार कर अपने साध्य और साधन को समर्थरूप प्ररूपण करने को समर्थ वचन 'समर्थन' कहलाता है। यहाँ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हेतु से तीन प्रकार स्वभावहेतु, कार्यहेतु और अनुपलब्धिहेतु लेना। अथवा पक्षसत्त्व सपक्षसत्त्व और विपक्षव्यावृत्ति लेना। जिस प्रकार बिना कहे हेतु का समर्थन नहीं हो सकता, उसी प्रकार पक्ष के प्रयोग बिना साध्य के आधार का भी निश्चय नहीं हो सकता, इसलिये पक्ष का प्रयोग करना आवश्यक है ॥ ३२ ॥

अनुमानाङ्गनिर्णयः अनुमान के अंगों का निर्णय—

एतद्द्वयमेवानुमानाङ्गं नोदाहरणम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—पक्ष और हेतु ये दो ही अनुमान के अङ्ग (अवयव या कारण) हैं, उदाहरण नहीं।

संस्कृतार्थ—पक्षो, हेतुश्चेति द्वितयमेवानुमानाङ्गं नोदाहरणादिकम् ॥ ३३ ॥

विशेषार्थ— सांख्य–पक्ष, हेतु और उदाहरण, मीमांसक-प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण और उपनय तथा नैयायिक–प्रतिज्ञा, हेतु उदाहरण, उपनय और निगमन। इस प्रकार क्रम से अनुमान के ३, ४ वा ५ अवयव मानते हैं। इस सूत्र द्वारा उनकी मान्यता का खण्डन किया गया है ॥ ३३ ॥

उदाहरण को अनुमान का अंग न होने में कारण—

न हि तत्साध्यप्रतिपत्त्यङ्गं तत्र यथोक्तहेतोरेव व्यापारात् ।

अर्थ—उदाहरण, साध्य के ज्ञान में कारण नहीं है, क्योंकि साध्य के ज्ञान में निर्दोष (साध्य का अविनाभावी) हेतु ही कारण होता है ॥ ३४ ॥

संस्कृतार्थ—साध्यप्रज्ञापनार्थम् उदाहरणप्रयोगः समीचीन इति चेन्न साध्याविनाभावित्वेन निश्चितस्य हेतोरेव साध्यज्ञानजनकत्व-सामर्थ्यात् ॥ ३४ ॥

विशेषार्थ—किसी का कहना है कि उदाहरण के बिना साध्य का ज्ञान नहीं हो सकता, इसलिये उदाहरण का प्रयोग करना चाहिये।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस कुयुक्ति का इस सूत्र में खण्डन किया गया है। सूत्र नं० ३५ और ३७ द्वारा अविनाभाव के निश्चय के हेतु तथा व्याप्ति के स्मरण के हेतु उदाहरण की आवश्यकता बतलाने का निषेध (खण्डन) किया गया है ॥ ३४ ॥

साध्य के साथ हेतु का अविनाभाव निश्चित कराने के लिये उदाहरण की आवश्यकताप्रदर्शन का खण्डन—

तदविनाभावनिश्चयार्थं वा विपक्षे बाधकप्रमाणबलादेव तत्सिद्धेः ॥ ३५ ॥

अर्थ—साध्य के साथ हेतु का अविनाभाव निश्चित करने के लिये भी उदाहरण आवश्यक नहीं है। क्योंकि विपक्ष में बाधक प्रमाण मिलने से ही साध्य के साथ हेतु का अविनाभाव निश्चित हो जाता है। अर्थात् यह निश्चित हो जाता है कि—अमुक साधन अमुक साध्य के बिना नहीं हो सकता ॥ ३५ ॥

संस्कृतार्थ—साध्येन सह हेतोरविनाभावनिश्चयार्थमुदाहरण—प्रयोगः आवश्यक इति चेन्न विपक्षे बाधकप्रमाणबलादेव तदविनाभाव—निश्चयसिद्धेः ॥ ३५ ॥

विशेषार्थ— किसी का कहना है कि उदाहरण के प्रयोग बिना साध्य के साथ हेतु का अविनाभाव ही निश्चित नहीं हो सकता, इसलिये उदाहरण का प्रयोग आवश्यक है। इस सूत्र के द्वारा इसी मान्यता का खण्डन किया गया है ॥ ३५ ॥

साध्य के सजातीय धर्म वाले धर्मी को सपक्ष कहते हैं। और साध्य से विजातीय धर्म वाले धर्मी को विपक्ष कहते हैं। जैसे पर्वत में अग्नि सिद्ध करते समय रसोईघर सपक्ष होता है और तालाब विपक्ष होता है; क्योंकि इसमें साध्य (अग्नि) से विजातीय धर्म (जल) होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अब धूमहेतु का अग्नि साध्य के साथ अविनाभाव इस प्रकार सिद्ध होता है कि तालाब में अग्नि के अभाव में धूम नहीं पाया जाता है यदि पाया जाय तो धूम और अग्नि के कार्यकारणभाव का भङ्गरूप बाधक प्रमाण उपस्थित होगा। विपक्ष में ऐसे ही बाधक प्रमाण मिलते हैं जिनसे साध्य के साथ साधन का अविनाभाव निर्णीत हो जाता है। इसलिये उदाहरण के प्रयोग की आवश्यकता नहीं ॥ ३५ ॥

उदाहरण के अनुमानाङ्ग न होने का प्रकारान्तर से खण्डन—

व्यक्तिरूपं च निदर्शनं सामान्येन तु व्याप्तिस्तत्रापि तद्विप्रतिपत्तावनवस्थानं स्याद् दृष्टान्तान्तरापेक्षणात् ॥ ३६ ॥

अर्थ—किसी खास व्यक्तिरूप (महानस या पर्वतरूप) तो उदाहरण होता है। और सामान्यरूप (सम्पूर्ण देश में, सम्पूर्ण काल में, तथा सम्पूर्ण आकारों में रहने वाले साध्य और साधन ग्रहण करने वाली) व्याप्ति होती है। ऐसी हालत में व्यक्तिरूप दृष्टान्त, सामान्यरूप व्याप्ति को कैसे ग्रहण कर सकता है ? और यदि उस उदाहरण में रहने वाले साध्य वा साधन के विषय में विवाद खड़ा हो जाय तो दृष्टान्त के लिये भी दृष्टान्त की आवश्यकता होगी, जिससे अनवस्था दोष आ जावेगा ॥ ३६ ॥

संस्कृतार्थ— दृष्टान्तो विशेषरूपः, व्याप्तिश्च सामान्यरूपा भवति। अतः उदाहरणेऽपि सामान्यव्याप्तिविवादे सति तन्निश्चयार्थम् उदाहरणान्तरापेक्षणात् अनवस्थादोषप्रसङ्गो भवेत् ॥ ३६ ॥

विशेषार्थ—अप्रामाणिक अनन्तपदार्थों की कल्पना में विश्रान्ति नहीं होना अनवस्था दोष कहलाता है। जिसप्रकार एक दृष्टान्त की सचाई के लिये दूसरे दृष्टान्त की आवश्यकता हुई, उसी प्रकार उसकी सचाई के लिये तीसरे की और तीसरे की सचाई के लिये चौथे की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आवश्यकता होगी, जिससे गगनतल में फैलने वाली बड़ी भारी अनवस्था चली जावेगी अर्थात् उस अनवस्था का कहीं पर अन्त नहीं आवेगा ॥ ३६ ॥

व्याप्ति के स्मरण के लिये भी उदाहरण की अनावश्यकता—

नापि व्याप्तिस्मरणार्थं, तथाविधहेतुप्रयोगादेव तत्स्मृतेः ।३७।

अर्थ—व्याप्ति का स्मरण कराने के लिये भी उदाहरण का प्रयोग करना कार्यकारी नहीं है, क्योंकि अविनाभाव स्वरूप हेतु के प्रयोग से ही व्याप्ति का स्मरण हो जाता है ॥ ३७ ॥

संस्कृतार्थ—ननु व्याप्तिस्मरणार्थम् उदाहरणप्रयोगस्य समीचीनत्व-मस्त्येवेति चेन्न साध्याविनाभावत्वापन्नस्य हेतोः प्रयोगादेव व्याप्तिस्म-रणसंसिद्धेः ॥ ३७ ॥

विशेषार्थ—पूर्वानुभूत पदार्थ का ही स्मरण होता है । अतः यदि व्याप्ति पूर्वानुभूत रहेगी तो हेतुप्रयोग से ही उसका स्मरण हो जावेगा । और जिसने कभी व्याप्ति का अनुभव किया ही नहीं उसके लिये तो सौ बार भी दृष्टान्त कहा जाय परन्तु वह कभी भी व्याप्ति का स्मारक नहीं होगा । इसलिये व्याप्ति के स्मरणार्थ भी उदाहरण का प्रयोग आवश्यक नहीं ॥ ३७ ॥

उपनय और निगमन के प्रयोग बिना उदाहरणप्रयोग से हानि—

तत्परमभिधीयमानं साध्यधर्मिणि साध्यसाधने सन्देहयति ।

अर्थ—उपनय और निगमन के बिना यदि केवल उदाहरण का प्रयोग किया जावेगा तो साध्य धर्मवाले धर्मी (पक्ष) में साध्य और साधन के सिद्ध करने में सन्देह करा देगा ॥ ३८ ॥

संस्कृतार्थ—केवलं प्रयुज्यमानं तदुदाहरणं साध्यविशिष्टे धर्मिणि साध्यसाधने संदिग्धे करोति । दृष्टान्तधर्मिणि साध्यव्याप्तसाधनोपदर्शने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऽपि साध्यधर्मिणि तन्निर्णयस्य कर्त्तुमशक्यत्वात् ॥ ३८ ॥

केवल उदाहरणप्रयोग से सन्देह होने का स्पष्टीकरण—

कुतो ऽन्यथोपनयनिगमने ॥ ३९ ॥

अर्थ—यदि उदाहरण के प्रयोग से सन्देह नहीं होता है तो उपनय और निगमन का प्रयोग क्यों किया जाता ? इससे निश्चय होता है कि उदाहरणमात्र के प्रयोग से संशय होता है ॥ ३९ ॥

संस्कृतार्थं— केवलोदाहरणप्रयोगस्य संशयजनकत्वाभावे उपनय-निगमनप्रयोगः किमर्थं विधीयते ? अतो निश्चीयते यदुदाहरणमात्रप्रयोगात्संशयो ऽवश्यं जायते ॥ ३९ ॥

उपनय और निगमन को अनुमानाङ्ग न होने का स्पष्टीकरण—

न च ते तदंगे, साध्यधर्मिणि हेतुसाध्ययो र्वचना-देवासंशयात् ॥ ४० ॥

अर्थ— उपनय और निगमन भी अनुमान के अङ्ग नहीं है, क्योंकि हेतु और साध्य के बोलने से ही साध्यधर्म वाले धर्मी (पक्ष) में संदेह मिट जाता है ॥ ४० ॥

संस्कृतार्थं – —ननूपयनिगमनयोरप्यनुमानाङ्गत्वमेव, तदप्रयोगे निःसंशयसाध्यसम्वित्तेरयोगादिति चेन्न हेतुसाध्ययोः प्रयोगादेव साध्य-धार्मिणि संशयस्य निराकृतत्वात् उपनयनिगमनयोरनुमानाङ्गत्वाभावात् ।४०।

अनुमानप्रयोग में केवल हेतु की आवश्यकता और उदाहरण आदि की अनावश्यकता—

समर्थनं व वरं हेतुरूपमनुमानावयवो वास्तु साध्ये तदुपयोगात् ॥ ४१ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—समर्थन ही वास्तविक हेतु का स्वरूप है और वही अनुमान का अंग है। क्योंकि साध्य की सिद्धि में उसी का उपयोग होता है ॥४१॥

संस्कृतार्थ—किञ्च दृष्टान्तादिकमभिधायापि समर्थनमवश्यं करणीयमसमर्थितस्याहेतुत्वादिति। तथा च समर्थनमेव वास्तविकहेतुस्वरूपमनुमानावयवो वा भवतु, साध्यसिद्धौ तस्यैवोपयोगान्नोदाहरणादिकस्येति ॥४१॥

विशेषार्थ—दोषों का अभाव दिखाकर हेतु के पुष्ट करने को समर्थन कहते हैं ॥४१॥

बालकों को समझाने के लिये उदाहरण, उपनय और
निगमन की आवश्यकता—

बालव्युत्पत्त्यर्थं तत्त्रयोपगमे शास्त्रे एवासौ न वादेऽनुपयोगात् ॥४२॥

अर्थ—अल्पज्ञानियों को समझाने के लिये उदाहरण, उपनय और निगमन की स्वीकारता शास्त्र में ही है, वादकाल में नहीं। क्योंकि वाद करने का अधिकार विद्वानों को ही होता है और वे पहले से ही व्युत्पन्न रहते हैं, इसलिये उनको उदाहरणादि का प्रयोग उपयोगी नहीं होता ॥४२॥

संस्कृतार्थ—मन्दमतीनां शिष्याणां सम्बोधनार्थमुदाहरणादित्रयप्रयोगाभ्युपगमेऽपि तत्त्रयप्रयोगो वीतरागकथायामेव ज्ञातव्यो न तु विजगीषुकथायाम्। तत्र तस्यानुपयोगात्। न हि वादकाले शिष्याः व्युत्पाद्याः व्युत्पन्नानामेव तत्राधिकारात ॥४२॥

दृष्टान्तस्य भेदौ, दृष्टान्त के भेद—

दृष्टान्तो द्वेधा, अन्वयव्यतिरेकभेदात् ॥४३॥

अर्थ—दृष्टान्त के दो भेद हैं। अन्वयदृष्टान्त और व्यतिरेकदृष्टान्त।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृतार्थ दृष्टौ अन्तौ साध्यसाधनलक्षणौ धर्मौ अन्वयमुखेन व्यतिरेकमुखेन वा यत्र सः दृष्टान्तः। स हि द्विविधः अन्वयदृष्टान्तो व्यतिरेकदृष्टान्तश्चेति ॥४३॥

अन्वयदृष्टान्तस्य लक्षणम्, अन्वयदृष्टान्त का लक्षण—

साध्यव्याप्तं साधनं यत्र प्रदर्श्यते सोऽन्वयदृष्टान्तः ॥४४॥

अर्थ— जिसमें साध्य के साथ साधन की व्याप्ति (अविनाभाव) दिखाई जाती है उसे अन्वयदृष्टान्त कहते हैं ॥४४॥

संस्कृतार्थ--साधनसद्भावे साध्यसद्भावो यत्र प्रदर्श्यते सोऽन्वय-दृष्टान्तः ॥४४॥

विशेषार्थ— अन्वयव्याप्ति दिखाकर जो दृष्टान्त दिया जाता है उसे अन्वयदृष्टान्त कहते हैं। जहाँ-जहाँ धूम होता है वहाँ-वहाँ अग्नि होती है, इस प्रकार साधन का सद्भाव दिखाकर साध्य का सद्भाव दिखाना अन्वयव्याप्ति है ॥४४॥

व्यतिरेकदृष्टान्तस्य स्वरूपम्, व्यतिरेकदृष्टान्त का स्वरूप --

साध्याभावे साधनाभावो यत्र कथ्यते स व्यतिरेकदृष्टान्तः।

अर्थ—जिसमें साध्य का अभाव दिखाकर साधन का अभाव दिखाया जाता है उसे व्यतिरेकदृष्टान्त कहते हैं ॥४५॥

संस्कृतार्थ—साध्याभावे साधनाभावो यत्र प्रदर्श्यते स व्यतिरेक-दृष्टान्तः प्रोच्यते ॥४५॥

विशेषार्थ—व्यतिरेकव्याप्ति दिखाकर जो दृष्टान्त दिया जाता है उसे व्यतिरेकदृष्टान्त कहते हैं। जहाँ-जहाँ अग्नि नहीं होती वहाँ-वहाँ धूम भी नहीं होता, इस प्रकार साध्य के अभाव में साधन का अभाव दिखाना व्यतिरेकव्याप्ति है।

उपनयस्य लक्षणम्, उपनय का लक्षण—

हेतोरुपसंहार उपनयः ॥४६॥

अर्थ—पक्ष में साधन के दुहराने को उपनय कहते हैं ॥४६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृतार्थ—उपनीयते पुनरुच्यते इत्युपनयः, पक्षे हेतोरुपसंहार उपनय इत्यर्थः ॥४६॥

विशेषार्थ— इस पर्वत में अग्नि है क्योंकि धूम है। फिर कोई एक दृष्टान्त देकर कहा जाता है कि 'उसी तरह इसमें धूम है' अथवा 'यह धूम वाला है' यहाँ पहिले धूम है कहा था फिर दुबारा कहा कि 'इसमें धूम है' इसलिए कहा जाता है कि पक्ष में साधन (हेतु) के दुहराने को उपनय कहते हैं ॥४६॥

निगमनस्य स्वरूपम्, निगमन का स्वरूप—

प्रतिज्ञायास्तु निगमनम् ॥४७॥

अर्थ—प्रतिज्ञा के दुहराने को निगमन कहते हैं। जैसे कि— 'धूम वाला' होने से यह अग्नि वाला है ॥४७॥

संस्कृतार्थ—पक्षस्य साध्यधर्मविशिष्टत्वेन प्रदर्शनं निगमनं प्रोच्यते ॥४७॥

अनुमानस्य भेदौ, अनुमान के दो भेद—

तदनुमानं द्वेधा ॥४८॥

अर्थ—अनुमान के दो भेद हैं।

संस्कृतार्थ—अनुमानं द्विविधम् ॥४८॥

अनुमानभेदस्पष्टीकरणम्, अनुमान के भेदों का स्पष्टीकरण—

स्वार्थपरार्थभेदात् ॥४९॥

अर्थ— स्वार्थ और परार्थ के भेद से अनुमान के दो भेद हैं।

संस्कृतार्थ—स्वार्थानुमानं, परार्थानुमानं चेत्यनुमानस्य द्वौ भेदौ स्तः ॥४९॥

स्वार्थानुमानस्य लक्षणम्, स्वार्थानुमान का लक्षण—

स्वार्थमुक्तलक्षणम् ॥५०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—'साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानम्' इस सूत्र से कहा गया अनुमान का लक्षण ही स्वार्थानुमान का लक्षण है ।

संस्कृतार्थ—परोपदेशमनपेक्ष्य स्वयमेव निश्चितात् धूमादिसाधनात् पर्वतादौ धर्मिणि वह्न्यादेः साध्यस्य यद् विज्ञानं जायते तत्स्वार्थानुमानं निगद्यते ।

परार्थानुमानस्य लक्षणम्, परार्थानुमान का लक्षण—

परार्थं तु तदर्थपरामर्शिवचनाज्जातम् ॥५१॥

अर्थ-- स्वार्थानुमान के विषय, साध्य और साधन को कहने वाले वचनों से उत्पन्न हुये ज्ञान को परार्थानुमान कहते हैं ।

संस्कृतार्थ—स्वार्थानुमानगोचरार्थप्रतिपादकवचनेभ्यः समुत्पन्नं यत्साधनज्ञानं तन्निमित्तिकं साध्यविज्ञानं परार्थानुमानं निगद्यते ॥५१॥

विशेषार्थ—किसी पुरुष को स्वार्थानुमान हुआ कि यहाँ धूम है; इसलिए अग्नि अवश्य होगी, क्योंकि अग्नि के विना धूम हो ही नहीं सकता । फिर वह अपने शिष्य को समझाने के लिये कहता है कि जहाँ धूम होता है वहाँ अग्नि अवश्य होती है । इसी प्रकार यहाँ धूम है इसीलिये यहाँ भी अग्नि होना आवश्यक है । इतने से वह शिष्य समझ लेता है । और उस समय उसे जो ज्ञान होता है, उसी को परार्थानुमान कहते हैं ।

क्योंकि परार्थानुमान का लक्षण घट गया । गुरु को स्वार्थानुमान था और उसके विषय थे साध्य (अग्नि) और साधन (धूम) । उन्हीं को गुरु ने कहा, तब गुरु के वचनों से शिष्य को साध्य का साधन से ज्ञान हुआ ॥५१॥

परार्थानुमानप्रतिपादक वचन के परार्थानुमान पना—

तद्वचनमपि तद्धेतुत्वात् ॥५२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ — परार्थानुमान के कारण होने से, परार्थानुमान के प्रतिपादक वचनों को भी परार्थानुमान कहते हैं। अथवा उन वचनों का स्वार्थानुमान कारण है, इसलिये उन्हें परार्थानुमान कहते हैं।

संस्कृतार्थ— स्वार्थानुमानस्य कार्यत्वात् परार्थानुमानस्य कारणत्वाच्च परार्थानुमानप्रतिपादकवचनमपि उपचारतः परार्थानुमानं प्रोच्यते ॥५२॥

विशेषार्थ—उपचार किसी प्रयोजन को अथवा किसी निमित्तको लेकर किया जाता है। यहाँ वचन, प्रथम तो परार्थानुमान के निमित्त हैं, दूसरे अनुमान के पाँच अवयवों के व्यवहार करने में प्रयोजनभूत हैं। क्योंकि ज्ञानस्वरूप आत्मा में प्रतिज्ञा आदि पाँच अवयवों का व्यवहार नहीं किया जा सकता, इसलिए उपचार से वचनों को भी परार्थानुमान कहते हैं।

वचनों को गौणरूप से अनुमान इसलिए कहा है कि वे अचेतन हैं और अचेतन से अज्ञान की निवृत्ति होती नहीं; इसलिये जब इन से फल नहीं होता तब इन्हें साक्षात् प्रमाण भी नहीं कह सकते। केवल उपचार (गौणता) से प्रमाण कहा गया है, क्योंकि वे परार्थानुमान के कारण और स्वार्थानुमान के कार्य हैं।

हेतो र्भेदे, हेतु के भेद—

स हेतु र्द्वेधोपलब्ध्यनुपलब्धिभेदात् ॥ ५३ ॥

अर्थ—उपलब्धिरूपहेतु और अनुपलब्धिरूपहेतु के भेद से हेतु के दो भेद हैं ॥५३॥

संस्कृतार्थ—हेतु द्विविधः उपलब्धिरूपो ऽनुपलब्धिरूपश्च।

उपलब्धिरूप और अनुपलब्धिरूप हेतु के विषय—

उपलब्धिः विधिप्रतिषेधयोरनुपलब्धिश्च ॥५४॥

अर्थ—उपलब्धिरूपहेतु और अनुपलब्धिरूपहेतु दोनों ही विधि और प्रतिषेध के साधक हैं ॥५४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृतार्थ—उपलब्धिरूपो हेतु द्विविधः-अविरुद्धोपलब्धिः, विरुद्धोपलब्धिश्चेति। अनुपलब्धिरूपो हेतुरपि द्विविधः—अविरुद्धानुपलब्धिः, विरुद्धानुपलब्धिश्चेति ॥५४॥

विशेषार्थ—ये चारों क्रमशः विधि, निषेध, विधि और निषेध के साधक होते हैं। बौद्धों का कहना है कि—उपलब्धिरूपहेतु विधि अर्थात् मौजूदगी का ही तथा अनुपलब्धिरूपहेतु निषेध अर्थात् गैरमौजूदगी का ही साधक है। इस सूत्र के द्वारा उनकी इस मान्यता का खंडन किया गया है ॥५४॥

अविरुद्धोपलब्धिभेदाः, अविरुद्धोपलब्धि के भेद—

अविरुद्धोपलब्धि विधौ षोढा, व्याप्यकार्यकारणपूर्वोत्तरसहचरभेदात् ॥५५॥

अर्थ—अविरुद्धव्याप्योपलब्धि, अविरुद्धकार्योपलब्धि, अविरुद्धकारणोपलब्धि, अविरुद्धपूर्वचरोपलब्धि, अविरुद्धोत्तरचरोपलब्धि और अविरुद्धसहचरोपलब्धि ये छह अविरुद्धोपलब्धिरूप हेतु के भेद हैं ॥५५॥

संस्कृतार्थ—अविरुद्धोपलब्धिरूपो हेतुः विधौ साध्ये सति षट्प्रकारो भवति। व्याप्यरूपः, कार्यरूपः, कारणरूपः, पूर्वचररूपः, उत्तरचररूपः, सहचररूपश्चेति ॥५५॥

विशेषार्थ—साध्य से व्याप्यस्वरूप, साध्य का कार्य, साध्य का कारण, साध्य से पूर्वचर, साध्य से उत्तरचर, और साध्य का सहचर ॥५५॥

कारणहेतु के विधिसाधकपना—

रसादेकसामग्र्यनुमानेन रूपानुमानमिच्छद्भिरिष्टमेव किञ्चित्कारणं हेतुर्यत्र सामर्थ्याप्रतिबन्धकारणान्तरावैकल्ये ॥५६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—रस से सामग्री का और कारणरूप सामग्री से रूप का अनुमान मानने वाले बौद्धों ने कहीं पर कारणरूप हेतु स्वयं माना ही है ; जहाँ पर कि कारण की शक्ति की मणि या मंत्र वगैरह से रुकावट नहीं होगी तथा अन्य किसी कारण की कमी नहीं होगी। इसलिये कारण-हेतु का निषेध नहीं किया जा सकता ॥५६॥

संस्कृतार्थ—सौगतः प्राह–विधिसाधनं द्विविधमेव, स्वभावकार्य-भेदात् । कारणस्य तु कार्याविनाभावाभावाद् अलिङ्गत्वम् । नावश्यं कारणानि कार्यवन्ति भवन्तीति वचनादिति । तदप्यसङ्गतम्–आस्वाद्य-मानाद्धि रसात् तज्जनिका सामग्री अनुमीयते ततो रूपानुमानं जायते, प्राक्तनो रूपक्षणः सजातीयं रूपक्षणान्तरलक्षणं कार्यं कुर्वन्नेव विजातीय-रसलक्षणं कार्यं कुरुते इति रूपानुमानमिच्छद्भिः सौगतैः किञ्चित्कारणं हेतुत्वेनाभ्युपगतमेव, रूपक्षणस्य सजातीयरूपक्षणान्तराव्यभिचारात् । एतेनेदमुक्तं यत् यस्मिन्कारणे सामर्थ्यंप्रतिबन्धः कारणान्तरविकलता च नास्ति, तद्विशिष्टकारणं कार्योत्पत्तिनियामकत्वादवश्यमेव कार्यानुमापकं भवतीति भावः ॥५६॥

विशेषार्थ—जहाँ कारण की शक्ति मणि या मंत्र वगैरह से रोक दी जावेगी अथवा किसी सहायक कारण की कमी होगी, वहाँ कारण कार्य का गमक (जनाने वाला) नहीं होगा, किन्तु दूसरी जगह तो अव-श्य होगा । इसलिये बौद्ध जो यह कहते थे कि 'कार्यहेतु और स्वभावहेतु ये दोनों ही विधि के साधक हैं, कारणहेतु नहीं' उनका कहना ठीक नहीं ॥५६॥

पूर्वचर और उत्तरचर हेतुओं की अन्यहेतुओं से भिन्नता—

न च पूर्वोत्तरचारिणोस्तादात्म्यं तदुत्पत्तिर्वा काल-व्यवधाने तदनुपलब्धेः ॥५७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—साध्य और साधन का तादात्म्यसम्बन्ध होने पर स्वभाव-हेतु में अन्तर्भाव होता है और तदुत्पत्ति सम्बन्ध होने पर कार्यहेतु या कारणहेतु में अन्तर्भाव होता है। काल का व्यवधान (फासला—अन्तर) होने पर ये दोनों सम्बन्ध नहीं होते। और इन पूर्वचर तथा उत्तरचर हेतुओं में अन्तर्मुहूर्त काल का व्यवधान रहता है। इसलिये इन दोनों हेतुओं का साध्य के साथ तादात्म्य और तदुत्पत्ति सम्बन्ध नहीं बनता; इससे इनका स्वभावादि तीनों में से किसी भी हेतु में अन्तर्भाव नहीं होता, अतएव ये जुदे ही हेतु हैं ॥५७॥

संस्कृतार्थ—साध्यसाधनयोस्तादात्म्यसम्बन्धे हेतोः स्वभावहेतावन्तर्भावो भवेत्। तदुत्पत्तिसम्बन्धे च कार्यहेतौ कारणहेतौ वान्तर्भावो विभाव्यते। न च पूर्वोत्तरचारिणो तदुभयसम्बन्धौ स्तः, कालव्यवधाने सति तदुभयसम्बन्धानुपलब्धेः। पूर्वोत्तरचारिणोश्चान्तर्मुहूर्तप्रमाणं कालव्यवधानं सुनिश्चितम्। अतश्च तयो र्न स्वभावादिहेतुष्वन्तर्भावः। इति तौ तेभ्यः पृथगेव हेतू प्रत्येतव्यौ ॥५७॥

काल का व्यवधान होने पर भी कार्यकारणभाव
मानने का खण्डन—

भाव्यतीतयो र्मरणजाग्रद्बोधयोरपि नारिष्टोद्बोधौ प्रतिहेतुत्वम्

अर्थ—आगामी मरण अरिष्ट (अपशकुनों) का कारण नहीं है। तथा बीता हुआ सायंकाल का ज्ञान प्रातःकाल के ज्ञान का कारण नहीं है ॥५८॥

संस्कृतार्थ—ननु कालव्यवधानेऽपि कार्यकारणभावो दृश्यते एव। यथा जाग्रत्प्रबुद्धदशाभाविप्रबोधयो र्मरणारिष्टयो र्वा कार्यकारणभाव इति चेन्न भविष्यत्कालीनमरणस्यापशकुनं प्रति, भूतकालीनजाग्रद्बोधस्य प्रबुद्धदशाभाविबोधं प्रति कारणत्वाभावात् ॥५८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—अपशकुन तो होता है पर मरण हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। इसी प्रकार शयन के बाद जागने पर जाग्रत अवस्था की बात याद आती भी है और नहीं भी आती है। इसलिये बौद्धों का काल का व्यवधान होने पर भी कार्यकारणभाव मान कर पूर्वचर और उत्तरचर हेतुओं का स्वभावादि हेतु में अन्तर्भाव मानना उचित नहीं है ॥५८॥

कालव्यवधान होने पर भी कार्यकारणभाव मानने के खण्डन में हेतु—

तद्व्यापाराश्रितं हि तद्भावभावित्वम् ॥५९॥

अर्थ—क्योंकि कार्यकारणभाव का होना कारण के व्यापार की अपेक्षा रखता है ॥५९॥

संस्कृतार्थ—यस्मात्कारणात् कार्यकारणभावः कारणव्यापाराश्रितो विद्यते, ततो मरणजाग्रद्बोधयोरपि नारिष्टबोधौ प्रति हेतुत्वम् अतिव्यवहितपदार्थानां कारणव्यापारसापेक्षाभावात् ॥५९॥

विशेषार्थ—उसके (कारण के) सद्भाव में उसका (कार्य का) होना कारण के व्यापार के आधीन है। परन्तु जब मरण है ही नहीं; तब उसका अरिष्ट के होने में व्यापार ही क्या होगा, जिससे कि कार्यकारणभाव मान लिया जावे। इसी प्रकार जाग्रद्बोध जब नष्ट ही हो गया; तब उसका भी उद्बोध के प्रति क्या व्यापार होगा? क्योंकि कारण बिना कार्य नहीं होता। जैसे कुम्भकार होय तो कलश बन सकता है, नहीं होय तो कलश नहीं बनता। इस कथन से यह निर्णय हुआ कि पूर्वचर और उत्तरचर स्वतन्त्र ही हेतु मानना चाहिये ॥५९॥

सहचरहेतु का स्वभावहेतु और कार्यहेतु से पृथक्पन—

सहचारिणोरपि परस्परपरिहारेणावस्थानात्सहोत्पादाच्च

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ— सहचारी पदार्थ परस्पर की भिन्नता से रहते हैं अर्थात् उनकी प्रतीति परस्पर की भिन्नता से होती है, इसलिये सहचारी हेतु का स्वभावहेतु में अन्तर्भाव नहीं हो सकता। और सहचारी पदार्थ एक साथ उत्पन्न होते हैं इस कारण उनमें कार्यकारणभाव भी नहीं बन सकता, जिससे कि कार्यहेतु या कारणहेतु में अन्तर्भाव हो सके ॥६०॥

संस्कृतार्थ— सहचारिणोरपि साध्यसाधनयोः परस्परपरिहारेणावस्थानात् सहचराख्यहेतो र्न स्वभावहेतावन्तर्भावः। सहोत्पादाच्च न कार्यहेतौ कारणहेतौ वान्तर्भावः। तस्मात्सौगतैः सहचराख्यो ऽपि हेतुः स्वतन्त्र एवाभ्युपगन्तव्यः ॥६०॥

विशेषार्थ— जिस प्रकार युगपत् उत्पन्न हुये गाय के सींगों में कार्यकारणभाव नहीं होता, उसी प्रकार सहचरों में भी नहीं होता, इसलिये सहचरहेतु भी एक भिन्न ही हेतु है ॥६०॥

अविरुद्धव्याप्योपलब्धि का उदाहरण—

परिणामी शब्दः कृतकत्वात्, य एवं; स एवं दृष्टो, यथा घटः, कृतकश्चायं तस्मात्परिणामीति, यस्तु न परिणामी स न कृतको दृष्टो; यथा वन्ध्यास्तनन्धयः, कृतकश्चायं, तस्मात्परिणामी ॥६१॥

अर्थ— शब्द परिणामी होता है क्योंकि वह किया हुआ है। जो जो किया हुआ होता है वह वह परिणामी होता है, जैसे घड़ा। घड़े की तरह शब्द भी किया हुआ है; अतः वह भी परिणामी होता है। जो पदार्थ परिणामी नहीं होता वह पदार्थ किया भी नहीं जाता, जैसे वन्ध्यास्त्री का पुत्र। उसी तरह यह शब्द कृतक होता है, इसी कारण परिणामी होता है। यहाँ परिणामित्व साध्य से अविरुद्धव्याप्य कृतकत्व की उपलब्धि है ॥६१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृतार्थ—परिणामी शब्दः इति प्रतिज्ञा। कृतकत्वादिति हेतुः। यथा घटः इत्यन्वयदृष्टान्तः। यथा वन्ध्यास्तन्धयः इति व्यतिरेकदृष्टान्तः। कृतकश्चायमित्युपनयः। तस्मात्परिणामीति निगमनम्। एवमत्र पूर्वं बालव्युत्पत्त्यर्थम् अनुमानस्य यानि पञ्चाङ्गानि अंगीकृतानि तान्युपदर्शितानि। अत्र कृतकत्वादिति हेतुः, शब्दस्य परिणामित्वं साधयति, परिणामित्वेन व्याप्तं च वर्तते, अतोऽविरुद्धव्याप्योपलब्धिनामत्वं लभते ॥६१॥

विशेषार्थ—यहां परिणामित्व साध्य से अविरुद्धव्याप्य कृतकत्व की उपलब्धि है ॥६१॥

अविरुद्धकार्योपलब्धि (कार्यहेतु) का उदाहरण—

अस्त्यत्र देहिनि बुद्धि र्व्याहारादेः ॥६२॥

अर्थ—इस प्राणी में बुद्धि है, क्योंकि बुद्धि के कार्य वचन आदि पाये जाते हैं। यहां बुद्धि के अविरुद्ध कार्य वचनादिक की उपलब्धि है; इसलिये यह अविरुद्धकार्योपलब्धि हेतु है।

संस्कृतार्थ—अस्त्यत्र देहिनि बुद्धिः व्याहारादेरित्यत्र बुद्ध्यविरुद्धकार्यस्य वचनादेरुपलब्धिः दृश्यते, अतोऽयम् अविरुद्धकार्योपलब्धिहेतुः कथ्यते ॥६२॥

विशेषार्थ—वचन की चतुरता और व्यापार आदिक बुद्धि बिना नहीं हो सकते। इस प्रकार बुद्धि के कार्य वचनादिक बुद्धिनामक साध्य को साधते हैं, इसलिये ये 'कार्यहेतु' हुये।

अविरुद्धकारणोपलब्धि (कारणहेतु) का उदाहरण—

अस्त्यत्र छाया छत्रात् ॥६३॥

अर्थ—यहां छाया है, क्योंकि यहां छत्र मौजूद है। किसी जगह छत्र देखा था और जाना था कि इसके नीचे छाया है, जहां छत्र होता है वहां छाया भी होती है। इस प्रकार यहां छत्रनामककारणहेतु छाया-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नामक साध्य को साधता है। अर्थात् यहां छाया के अविरुद्धकारण छत्र की मौजूदगी है, इसलिये यह हेतु अविरुद्धकारणोपलब्धिहेतु, कहा जाता है ॥६४॥

संस्कृतार्थ—'अस्त्यत्र छाया छत्रात्' अत्र छत्रनामककारणहेतुः छायानामकसाध्यं साध्नोति। अर्थादत्रच्छायायाः अविरुद्धकारणस्य छत्रस्योपलब्धि विद्यते। अतोऽयं हेतुः अविरुद्धकारणोपलब्धिहेतुः कथ्यते ॥६४॥

अविरुद्धपूर्वचरोपलब्धि (पूर्वचरहेतु) का उदाहरण—

उदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयात् ॥६४॥

अर्थ—एक मुहूर्त के बाद रोहिणी का उदय होगा, क्योंकि कृत्तिका का उदय हो रहा है। यहां रोहिणी के उदय से पूर्व होने वाले कृत्तिका के उदय की मौजूदगी है। अर्थात् यहां कृत्तिकोदयरूपपूर्वचरहेतु शकटोदय की भावितारूप साध्य को साधता है। इसलिये यह हेतु 'अविरुद्धपूर्वचरोपलब्धि कहा जाता है ॥६४॥

संस्कृतार्थ—'उदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयाद्' अत्र कृत्तिकोदयरूप-पूर्वचरहेतुः शकटोदयभावितारूपसाध्यं साध्नोति। अर्थादत्र शकटोदय-भाविताया: अविरुद्धपूर्वचरस्य कृत्तिकोदयस्योपलब्धि विद्यते। अतोऽयं हेतुः 'अविरुद्धपूर्वचरोपलब्धिहेतुः' निगद्यते ॥६४॥

अविरुद्ध उत्तरचरोपलब्धि (उत्तरचरहेतु) का उदाहरण—

उदगाद् भरणिः प्राक्तत एव ॥६५॥

अर्थ—एक मुहूर्त के पहले ही भरणि का उदय हो चुका है, क्योंकि कृत्तिका का उदय हो रहा है। यहां कृत्तिकोदयनामक उत्तरचर-हेतु भरण्युदयभूततानामक साध्य को साधता है। अर्थात् यहां भरणि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के उदय की भूतता के अविरुद्ध उत्तरचर कृतिका के उदय की उपलब्धि है। इसलिये यह हेतु 'अविरुद्धोत्तरचरोपलब्धिहेतु' कहलाता है ॥६५॥

संस्कृतार्थ—मुहूर्तात्प्राक् भरणेरुदयो व्यतीतः, कृतिकोदयात्। अत्र कृतिकोदयनामकोत्तरचरहेतुः भरण्युदयभूततारूपसाध्यं साधयति। अर्थादत्र भरण्युदयभूततायाः अविरुद्धोत्तरचरस्य कृतिकोदयस्योपलब्धि विद्यते। अतोऽयं हेतुः 'अविरुद्धोत्तरचरोपलब्धिहेतुः' निगद्यते ॥६५॥

अविरुद्धसहचरोपलब्धि (सहचरहेतु) का उदाहरण—

अस्त्यत्र मातुर्लिंगे रूपं रसात् ॥६६॥

अर्थ— इस बिजौरे में रूप है, क्योंकि रस पाया जाता है। यहां रसनामक सहचरहेतु रूपनामक साध्य को साधता है। अर्थात् यहां रूप का अविरुद्ध सहचर रस मौजूद है। इसलिये यह हेतु 'अविरुद्धसहचरोपलब्धिहेतु' कहलाता है ॥६६॥

संस्कृतार्थ—अस्त्यत्र मातुर्लिंगे रूपं, रसात्। अत्र रसनामकसहचरहेतुः रूपनामकसाध्यं साधयति। अर्थादत्र रूपविरुद्धसहचरस्य रसस्योपलब्धि विद्यते। अतोऽयं हेतुः 'अविरुद्धसहचरोपलब्धिहेतुः प्रोच्यते ॥६६॥

विरुद्धोपलब्धिभेदाः, विरुद्धोपलब्धि के भेद—

विरुद्धतदुपलब्धिः प्रतिषेधे तथा ॥६७॥

संस्कृतार्थ—प्रतिषेधसाधिकाया विरुद्धोपलब्धेः षड् भेदा विद्यन्ते। विरुद्धव्याप्योपलब्धिः, विरुद्धाकार्योपलब्धिः, विरुद्धकारणोपलब्धि, विरुद्धपूर्वचरोपलब्धिः, विरुद्धोत्तरचरोपलब्धिः, विरुद्धसहचरोपलब्धिश्चेति ॥६७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ— इन हेतुओं में साध्य से विरुद्ध व्याप्य की उपलब्धि होती है। इसलिये इन्हें विरुद्धोपलब्धिहेतु कहते हैं। यहां पर सब हेतुओं के आदि में वह पद जोड़ना चाहिये जिसका कि आप निषेध करना चाहते हैं। ये हेतु उसी के विरुद्ध की उपलब्धि रूप पड़ जावेंगे ॥६७॥

विरुद्धव्याप्योपलब्धेरुदाहरणम्, विरुद्धव्याप्योपलब्धि का दृष्टान्त—

नास्त्यत्र शीतस्पर्शः औष्ण्यात् ॥६८॥

अर्थ— यहां शीतस्पर्श नहीं है, क्योंकि शीतस्पर्श से विरुद्ध अग्नि की व्याप्य उष्णता मौजूद है। जिसका व्याप्य मौजूद; है वह उसी को जनावेगा। अतएव यहां औष्ण्यत्वहेतु अग्नि को ही साबित करेगा, इससे यह हेतु विरुद्धव्याप्योपलब्धिहेतु कहा जावेगा ॥६८॥

संस्कृतार्थ—नास्त्यत्र शीतस्पर्शः औष्ण्यात्। अत्र प्रतिषेध्यरूपसाध्यात् शीतस्पर्शात् विरुद्धस्याग्नेः व्याप्यस्वरूपा उष्णता विद्यते। यस्य व्याप्यं विद्यते तत्तदेव साधयिष्यति। इत्थमत्र औष्ण्यत्वहेतुः शीतस्पर्शसाध्याविरुद्धव्याप्यम् अग्निमेव साधयिष्यति। अतोऽयं हेतु विरुद्धव्याप्योपलब्धिहेतुः भवेत्।

विरुद्धकार्योपलब्धेरुदाहरणम्, विरुद्धकार्योपलब्धि का उदाहरण—

नास्त्यत्र शीतस्पर्शो धूमात् ॥६९॥

अर्थ—यहां शीतस्पर्श नहीं है, क्योंकि शीतस्पर्श से विरुद्ध अग्नि का कार्य धूम मौजूद है। अग्नि का कार्य धूम रह कर अग्नि को ही जनावेगा; शीतस्पर्श को नहीं, इससे यहां यह धूमत्वहेतु विरुद्धकार्योपलब्धिहेतु होगा ॥६९॥

संस्कृतार्थ—नास्त्यत्र शीतस्पर्शो धूमात्। अत्र प्रतिषेध्यरूपसाध्यात् शीतस्पर्शात् विरुद्धस्याग्नेः कार्यस्वरूपो धूमः उपलभ्यते। अग्नेः कार्यं स्थित्वाग्निमेव साधयिष्यति, नो शीतस्प-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शं म् । अतो ऽ यं धूमत्वहेतु र्विरुद्धकार्योपलब्धिहेतु र्भवेत् ॥ ६९ ॥

विरुद्धकारणोपलब्धि का उदाहरण—

नास्मिन् शरीरिणि सुखमस्ति हृदयशल्यात् ॥ ७० ॥

अर्थ—इस जीव में सुख नहीं है, क्योंकि सुख विरोधी दुःख का कारण हृदयशल्य (मानसिक व्यथा) मौजूद है। और दुःख का कारण मौजूद है, इसलिये वह दुःख को ही जनावेगा। इसलिये यहाँ यह हृदय-शल्यहेतु विरुद्धकारणोपलब्धिहेतु होगा ॥ ७० ॥

संस्कृतार्थ— नास्मिन् शरीरिणि सुखमस्ति हृदयशल्यात् अत्र सुख-विरोधिनो दुःखस्य कारणं हृदयशल्यरूपहेतुः विरुद्धकारणोपलब्धि-हेतुर्जातः ॥ ७० ॥

विरुद्धपूर्वचरोपलब्धिहेतु का उदाहरण—

नोदेष्यति मुहूर्तान्ते शकटं रेवत्युदयात् ॥ ७१ ॥

अर्थ—एक मुहूर्त के बाद रोहिणी का उदय नहीं होगा, क्योंकि रोहिणी के उदय से विरुद्ध अश्विनीनक्षत्र के पूर्वचर (पहले उदय होने वाले) रेवती का उदय हो रहा है। रेवती का उदय अश्विनी के उदय का पूर्वचर है, इसलिये वह अश्विनी के उदय की भाविता को ही जनावेगा और रोहिणी के उदय का निषेध करेगा, इसलिये यहाँ यह हेतु विरुद्ध-पूर्वचरोपलब्धिहेतु हुआ ॥ ७१ ॥

संस्कृतार्थ—नोदेष्यति मुहूर्तान्ते शकटं रेवत्युदयात् । अत्र शकटो-दयाद् विरुद्धस्याश्विनीनक्षत्रपूर्वचरस्य रेवतीनक्षत्रस्योदयो विद्यते । स चाश्विनीनक्षत्रपूर्वचरो वर्तते, अतएवाश्विनीनक्षत्रभावितामेव साधयिष्यति, शकटोदयञ्च निषेत्स्यति । अतो ऽ यं रेवत्युदयत्वहेतुः 'विरुद्धपूर्वचरो-पलब्धिहेतु' र्जातः ॥ ७१ ॥

विरुद्धोत्तरचर हेतु का उदाहरण—

नोदगाद् भरणिः मुहूर्तात्पूर्वं पुष्योदयात् ॥ ७२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ--एक मुहूर्त पहले भरणि का उदय नहीं हुआ।' क्योंकि भरणि के उदय से विरुद्ध पुनर्वसु के उत्तरचर (पीछे उदय होने वाले) पुष्यनक्षत्र का उदय हो रहा है। अर्थात् पुष्यनक्षत्र का उदय पुनर्वसु का उत्तरचर है; इसलिये उसी के उदय को जनावेगा, कि हो गया, और भरणि के हो चुके उदय का निषेध करेगा। इसलिये यहाँ यह हेतु विरुद्धोत्तरचरोपलब्धि हुआ ।। ७२ ।।

संस्कृतार्थ— नोदगाद्भरणिः मुहूर्तात्पूर्वं पुष्योदयात् । अत्र भरण्युदयाद् विरुद्धस्य पुनर्वसूत्तरचरस्य पुष्यस्योदयो विद्यते । अर्थात् पुष्यनक्षत्रोदयः पुनर्वसुनक्षत्रोत्तरचरो वर्तते ऽ तस्तस्यैवोदयं सूचयिष्यति यत्-पुनर्वसूदयो भूतस्तथा च भूतभरण्युदयं निषेत्स्यति, अतोऽत्रायं पुष्योदयस्य-हेतुः विरुद्धोत्तरचरोपलब्धि र्जातः ।। ७२ ।।

विरुद्धसहचरोपलब्धेरुदाहरणम्, विरुद्धसहचरहेतु का उदाहरण—

नास्त्यत्र भित्तौ परभागाभावो ऽ र्वाग्भागदर्शनात् ।

अर्थ—इस दीवाल में उस तरफ के भाग का अभाव नहीं है, क्योंकि उस तरफ के भाग के अभाव से विरुद्ध उस तरफ के भाग के सद्भाव का साथी, इस तरफ का भाग दीख रहा है। अर्थात् उस तरफ के भाग के सद्भाव का साथी मौजूद है, इसलिये वह उसके सद्भाव को ही कहेगा, कि इस तरफ का भाग भी मौजूद है। इस कारण यह हेतु विरुद्धसहचरोपलब्धिहेतु हुआ ।। ७३ ।।

संस्कृतार्थ—नास्त्यत्र भित्तौ परभागाभावो ऽ र्वाग्भागदर्शनात् । अत्र परभागाभावाद् विरुद्धः परभागसद्भावसहचरो ऽ र्वाग्भागो दृश्यते । अर्थात्परभागसद्भावसहचरो विद्यते ऽ तः सः परभागसद्भावमेव साधयिष्यति । अतो ऽ त्रायम् अर्वाग्भागदर्शनरूपहेतुः विरुद्धसहचरोपलब्धिहेतुः र्जातः ।। ७३ ।।

अविरुद्धानुपलब्धिभेदाः, अविरुद्धानुपलब्धि के भेद—

अविरुद्धानुपलब्धिः प्रतिषेधे सप्तधा, स्वभावव्यापक-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कार्यकारणपूर्वोत्तरसहचरानुपलम्भभेदात् ॥७४॥

संस्कृतार्थ—अविरुद्धानुपलब्धिः प्रतिषेधसाधिका जायते । तस्याः सप्त भेदा विद्यन्ते । अविरुद्धस्वभावानुपलब्धिः, अविरुद्धव्यापकानुपलब्धिः, अविरुद्धकार्यानुपलब्धिः, अविरुद्धकारणानुपलब्धिः, अविरुद्धपूर्वचरानुपलब्धिः, अविरुद्धोत्तरचरानुपलब्धिः, अविरुद्धसहचरानुपलब्धिश्चेति ॥७४॥

अविरुद्धस्वभावानुपलब्धि का उदाहरण—

नास्त्यत्र भूतले घटोऽनुपलब्धेः ॥७५॥

अर्थ—इस भूतल में घट नहीं है, क्योंकि वह दिखता नहीं है। यहां घट के प्राप्त होने रूप स्वभाव का भूतल में अभाव है, इसलिये वह घट के अभाव को सिद्ध करता है, अर्थात् प्रतिषेध करने योग्य घट के अविरुद्धस्वभाव का अनुपलम्भ (अभाव) है। इसलिये यह हेतु अविरुद्धस्वभावानुपलब्धि हुआ ॥७५॥

संस्कृतार्थ—नास्त्यत्र भूतले घटो ऽनुपलब्धेः । अत्र घटप्राप्तिरूपस्वभावस्य भूतले ऽभावो विद्यते ऽतः स घटाभावं साधयति । अर्थात् प्रतिषेधयोग्यघटस्याविरुद्धस्वभावस्यानुपलम्भो वर्तते । अतो ऽयमनुपलब्धित्वहेतुः 'अविरुद्धस्वभावानुपलब्धिहेतुः' जातः ॥७५॥

अविरुद्धव्यापकानुपलब्धि का उदाहरण—

नास्त्यत्र शिंशपा वृक्षानुपलब्धेः ॥७६॥

अर्थ—यहां सीसौन नहीं है, क्योंकि उसके व्यापक वृक्ष का अभाव है। व्यापक वृक्ष के बिना व्याप्य शिंशपा हो ही नहीं सकता। अर्थात् यहां व्यापक वृक्ष की अनुपलब्धि, व्याप्य शिंशपा (सीसौन) के प्रतिषेध को सिद्ध करती है। इसलिये यह हेतु अविरुद्धव्यापकानुपलब्धिहेतु हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृतार्थ—नास्त्यत्र शिंशपा वृक्षानुपलब्धेः। व्यापकवृक्षं विना व्याप्यस्वरूपः शिंशपाः भवितुं नार्हति। अर्थादत्र व्यापकवृक्षानुपलब्धिः, व्याप्यशिंशपाप्रतिषेधं साधयति। अतो ऽयं वृक्षानुपलब्धिहेतुः 'अविरुद्ध-व्यापकानुपलब्धिहेतुः' सम्भूतः।

अविरुद्धकार्यानुपलब्धि का उदाहरण—

नास्त्यत्राप्रतिबद्धसामर्थ्योऽग्नि धूमानुपलब्धेः ॥७७॥

अर्थ—यहां बिना सामर्थ्य रुकी अग्नि नहीं है, क्योंकि धूम नहीं पाया जाता है। यहां सामर्थ्य वाली अग्नि के अविरुद्ध कार्य धूम का अभाव है, इसलिये मालूम होता है कि यहां अग्नि नहीं है, अगर है भी तो भस्म वगैरह से ढकी हुई है। इस प्रकार यहां यह धूमानुपलब्धित्व-हेतु अविरुद्धकार्यानुपलब्धिहेतु हुआ ॥७७॥

संस्कृतार्थ—नास्त्यत्राप्रतिबद्धसामर्थ्योऽग्नि धूमानुपलब्धेः। अत्र सामर्थ्यवतोऽग्नेरविरुद्धकार्यस्य धूमास्याभावो विद्यते, अतश्च प्रतीयते यदत्राग्नि र्नास्ति, अस्ति चेद् भस्मादिभिराच्छन्नो विद्यते। एवमत्रायं धूमानुपलब्धित्वहेतुः 'अविरुद्धकार्यानुपलब्धिहेतुः' विज्ञेयः ॥७७॥

अविरुद्धकारणानुपलब्धि का उदाहरण—

नास्त्यत्र धूमो ऽनग्नेः ॥७८॥

अर्थ – यहां धूम नहीं है, क्योंकि अग्नि नहीं है। यहां धूम के अविरुद्ध कारण अग्नि का अभाव धूम के अभाव को सिद्ध करता है, इसलिये यह हेतु अविरुद्धकारणानुपलब्धिहेतु हुआ ॥७८॥

संस्कृतार्थ—नास्त्यत्र धूमोऽनग्नेः। अत्र धूमास्याविरुद्धकारण-स्याग्नेरभावो धूमाभावं साधयति। अतोऽयम् अनग्नित्वहेतुः 'अविरुद्ध-कारणानुपलब्धिहेतुः' जातः ॥७८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अविरुद्धपूर्वचरानुपलब्धि का उदाहरण—

न भविष्यति मुहूर्तान्ते शकटं कृतिकोदयानुपलब्धेः।

अर्थ—एक मुहूर्त के बाद रोहिणी का उदय नहीं होगा, क्योंकि अभी कृत्तिका का भी उदय नहीं हुआ है। यहां शकटोदय के अविरुद्ध पूर्वचर कृतिका के उदय का अभाव एक मुहूर्त के बाद रोहिणी के उदय के अभाव को सिद्ध करता है, इसलिये यह हेतु अविरुद्धपूर्वचरानुपलब्धि-हेतु हुआ ॥७९॥

संस्कृतार्थ—न भविष्यति मुहूर्तान्ते शकटं; कृतिकोदयानुपलब्धेः। अत्र शकटोदयादविरुद्धस्य पूर्वचरस्य कृतिकोदयस्याभावो मुहूर्तान्ते शकटोदयाभावं साधयति। अतोऽयं कृतिकोदयानुपलब्धित्वहेतुः अविरुद्ध-पूर्वचरानुपलब्धिहेतु र्जातः।

अविरुद्धोत्तरचरानुपलब्धि का उदाहरण—

नोदगाद् भरणिः मुहूर्तात्प्राक् तत एव ॥८०॥

अर्थ—एक मुहूर्त पहले भरणि का उदय नहीं हो चुका है, क्योंकि अभी कृत्तिका का भी उदय नहीं हुआ है। यहां भरणि के उदय के अविरुद्ध उत्तरचर कृतिका के उदय का अभाव, भरणि के उदय की भूतता के अभाव को सिद्ध करता है, इसलिये यह हेतु अविरुद्धोत्तरचरो-पलब्धिहेतु हुआ ॥८०॥

संस्कृतार्थ— नोदगाद् भरणिः मुहूर्तात्प्राक् तत एव। अत्र भरण्यु-दयादविरुद्धोत्तरचरस्य कृतिकोदयस्याभावो भरण्युदयभूतताऽभावं साधयति। अतोऽयं हेतुः 'अविरुद्धोत्तरचरोपलब्धिहेतुः जातः ॥८०॥

रानु अविरुद्धसहचरोपलब्धि का उदाहरण—

नास्त्यत्र समतुलायामुन्नामो नामानुपलब्धेः ॥८१॥

अर्थ— इस तराजू में ऊंचापन नहीं है, क्योंकि नीचेपन का अभाव है। यहां ऊंचेपन का अविरुद्ध सहचर नीचेपन का अभाव ऊंचेपन के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभाव को सिद्ध करता है, इससे यह हेतु अविरुद्धसहचरानुपलब्धिहेतु हुआ ॥८१॥

संस्कृतार्थं- नास्त्यत्र समतुलायामुन्नामो नामानुपलब्धेः । अत्र उन्नामाद् अविरुद्धसहचरस्य नामस्याभावः उन्नामस्याभावं साधयति । अतोऽयं नामानुपलब्धित्वहेतुः अविरुद्धसहचरानुपलब्धिहेतु र्जातः ॥८१॥

विरुद्धानुपलब्धेः भेदाः, विरुद्धानुपलब्धि के भेद---

विरुद्धानुपलब्धि विधौ त्रेधा, विरुद्धकार्यकारणस्वभावानुपलब्धिभेदात् ॥८२॥

अर्थ---विधिसाधिका विरुद्धानुपलब्धि के तीन भेद हैं। विरुद्धकार्यानुपलब्धि, विरुद्धकारणानुपलब्धि और विरुद्धस्वभावानुपलब्धि ।८२।

विशेषार्थ---साध्य से विरुद्ध पदार्थ के कार्य का अभाव, साध्य से विरुद्ध पदार्थ के कारण का अभाव और साध्य से विरुद्ध पदार्थ के स्वभाव का अभाव। ये क्रम से उन तीनों विरुद्धकार्यानुपलब्धि वगैरह के लक्षण हैं।

विरुद्धकार्यानुपलब्धि का उदाहरण--

यथास्मिन्प्राणिनि व्याधिविशेषोऽस्ति निरामयचेष्टानुपलब्धेः ॥८३॥

अर्थ---इस प्राणी में कोई एक रोग है, क्योंकि नीरोग चेष्टा नहीं पाई जाती है। यहां व्याधिविशेष के सद्भावरूप साध्य से विरोधी व्याधिविशेष के अभाव के कार्य नीरोग चेष्टा की अनुपलब्धि है। इससे यह हेतु विरुद्धकार्यानुपलब्धिहेतु हुआ।

संस्कृतार्थं---अस्मिन्प्राणिनि व्याधिविशेषोऽस्ति निरामयचेष्टानुपलब्धेः। अत्र व्याधिविशेषसद्भावसाध्याद् विरोधिनो व्याधिविशेषा-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावस्य कार्यस्य नीरोगचेष्टायाः अनुपलब्धि विद्यते। अतोऽयं हेतुः विरुद्धकार्यानुपलब्धिहेतु र्जातः ॥८३॥

विरुद्धकारणानुपलब्धि का उदाहरण—

अस्त्यत्र देहिनि दुःखमिष्टसंयोगाभावात् ॥८४॥

अर्थ—इस प्राणी में दुःख है, क्योंकि इष्टसंयोग का अभाव है। यहां दुःख के विरोधी सुख के कारण इष्टसंयोग का अभाव दुःख के सद्भाव को सिद्ध करता है, इसलिये यहां यह हेतु विरुद्धकारणानुपलब्धिहेतु हुआ ॥८४॥

संस्कृतार्थ—अस्त्यत्र देहिनि दुःखमिष्टसंयोगाभावात्। अत्र दुःखविरोधिनः सुखकारणस्येष्टसंयोगस्याभावो दुःखसद्भावमेव साधयति। अतोऽत्रायम् इष्टसंयोगाभावत्वहेतुः विरुद्धकारणानुपलब्धिहेतुरवगन्तव्यः ॥८४॥

विरुद्धस्वभावानुपलब्धि का उदाहरण—

अनेकान्तात्मकं वस्त्वेकान्तस्वरूपानुपलब्धेः ॥८५॥

अर्थ—पदार्थ अनेक धर्म वाले हैं, क्योंकि उनमें नित्य आदि एकान्त स्वरूप का अभाव है। यहां अनेकान्तात्मकता से विरुद्ध एकान्तात्मकता का अभाव वस्तु की अनेकान्तात्मकता को ही सिद्ध करता है। इससे यहां यह हेतु विरुद्धस्वभावानुपलब्धि हेतु हुआ ॥८५॥

संस्कृतार्थ—अनेकान्तात्मकं वस्त्वेकान्तस्वरूपानुपलब्धेः। अत्रानेकान्तात्मकताया विरुद्धः एकान्तात्मकताया अभावो वस्तुनोऽनेकान्तात्मकतामेव साधयति, अतोऽत्रायं हेतुः विरुद्धस्वभावानुपलब्धिहेतुः प्रत्येतव्यः ॥८५॥

हेत्वन्तरों का पूर्वोक्त हेतुओं में अन्तर्भाव—

परम्परया सम्भवत्साधनमत्रैवान्तर्भावनीयम् ॥८६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—गुरुपरम्परा से और भी जो साधन (हेतु) सम्भव हो सकते हों उनका पूर्वोक्त साधनों में ही अन्तर्भाव करना चाहिये ॥८६॥

संस्कृतार्थ—गुरुपरम्परया सम्भवन्ति भिन्नानि साधनानि पूर्वोक्त-साधनेष्वेवान्तर्भावनीयानि ॥८६॥

पूर्वानुक्त हेतु का प्रथमोदाहरण—

अभूदत्र चक्रे शिवकः स्थासात् ॥८७॥

अर्थ—इस चके पर शिवक हो गया है, क्योंकि स्थास मौजूद है। यह स्थासरूपहेतु परम्परा से शिवक का कार्य है, साक्षात् नहीं, साक्षात् कार्य तो छत्रक है। इस प्रकार यहाँ यह हेतु 'कार्यकार्य' हेतु हुआ।

संस्कृतार्थ—अभूदत्र चक्रे शिवकः स्थासात्। अत्र स्थासरूपहेतुः परम्परया शिवककार्यं विद्यते; साक्षान्नो, साक्षात्कार्यं तु छत्रकं विद्यते। एवमत्रायं स्थासादिति हेतुः कार्यकार्यहेतु विद्यते ॥८७॥

विशेषार्थ—शिवक, छत्रक, स्थास, कोश और कुशूल आदि कुम्हार के चाक की माटी के क्रमशः नाम हैं ॥८७॥

कार्यकार्यहेतु का अविरुद्धकार्योपलब्धिहेतु में अन्तर्भाव—

कार्यकार्यमविरुद्धकार्योपलब्धौ ॥८८॥

अर्थ—कार्य के कार्यरूप हेतु का (परम्पराकार्यहेतु का) अविरुद्धकार्योपलब्धि में अन्तर्भाव होता है ॥८८॥

संस्कृतार्थ—कार्यकार्य (परम्पराकार्य) रूपहेतुरविरुद्धकार्योपलब्धिहेतावन्तर्भवति ॥८८॥

कार्यकार्यहेतु का अविरुद्धकार्योपलब्धि में अन्तर्भाव की पुष्टि—

नास्त्यत्र गुहायां मृगक्रीडनं, मृगारिसंशब्दनात्। कारणविरुद्धकार्यं विरुद्धकार्योपलब्धौ यथा ॥८९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—इस गुफा में मृग की क्रीडा नहीं है, क्योंकि सिंह बोल रहा है। यहाँ कारणविरुद्ध कार्य है, अर्थात् मृगक्रीडा के कारण मृग के विरोधी सिंह का शब्दरूप कार्य पाया जाता है, इसलिये इस हेतु का विरुद्धकार्योपलब्धिहेतु में अन्तर्भाव करना चाहिये। और जैसे इस कारणविरुद्धकार्योपलब्धि का विरुद्धकार्योपलब्धि में अन्तर्भाव होता है, उसी प्रकार कार्यकार्य हेतु का अविरुद्धकार्योपलब्धि हेतु में अन्तर्भाव होता है ॥८७॥

संस्कृतार्थ—नास्त्यत्र गुहायां मृगक्रीडनं मृगारिसंशब्दनात्। अत्र कारणविरुद्धकार्यं विद्यते। अर्थान्मृगक्रीडाकारणमृगस्य विरोधिनः सिंहस्य शब्दरूपं कार्यमुपलभ्यते, अतोऽयं हेतुः विरुद्धकार्योपलब्धि-हेतु विज्ञेयः। तथा च यथा कारणविरुद्धकार्योपलब्धि विरुद्धकार्योपल-ब्धावन्तर्भवति तथैव कार्यकार्यहेतुरपि अविरुद्धकार्योपलब्धावन्तर्भवतीति भावः ॥८९॥

व्युत्पन्न जनों की अपेक्षा अनुमान के अवयवों के प्रयोग का नियम

व्युत्पन्नप्रयोगस्तु तथोपपत्त्याऽन्यथानुपपत्त्यैव वा।

अर्थ—व्युत्पन्न पुरुषों के लिये तथोपपत्ति या अन्यथानुपपत्ति नियम से ही प्रयोग करना चाहिये ॥९०॥

संस्कृतार्थ—व्युत्पन्नप्रयोगस्तु तथोपपत्त्या, अन्यथानुपपत्त्यैव वा विधेयः ॥९०॥

विशेषार्थ—साध्य के सद्भाव में साधन का होना तथोपपत्ति और साध्य के अभाव में साधन का न होना अन्यथानुपपत्ति कहलाती है॥९०॥

व्युत्पन्नप्रयोग की उदाहरण द्वारा पुष्टि-

अग्निमानयं देशस्तथैव धूमवत्त्वोपपत्तेर्धूमवत्त्वान्यथानुपपत्तेर्वा ॥९१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—यह प्रदेश अग्नि वाला है, क्योंकि अग्नि के सद्भाव में ही यह धूम वाला हो सकता है अथवा अग्नि के अभाव में यह धूम वाला हो ही नहीं सकता, इसलिये इसमें अवश्य अग्नि है, इस प्रकार प्रयोग करना चाहिये। इस दृष्टान्त से यह दृढ़ किया गया कि विद्वानों के लिये उदाहरण वगैरह के प्रयोग की आवश्यकता नहीं है ॥९१॥

संस्कृतार्थ—अग्निमानयं देशः, अग्निमत्त्वे सत्येव धूमवत्त्वोपपत्तेः, अग्निमत्त्वाभावे धूमवत्त्वानुपपत्तेश्च। व्युत्पन्नायैवमेव प्रयोगो विधेयः। दृष्टान्तेनानेन दृढीकृतं यद्व्युत्पन्नायोदाहरणादीनां प्रयोगस्यावश्यकता नो विद्यते ॥९१॥

उदाहरण विना व्याप्ति के निश्चयाभाव की आशंका का निराकरण

हेतुप्रयोगो हि यथा व्याप्तिग्रहणं विधीयते, सा च तावन्मात्रेण व्युत्पन्नैरवधार्यते ॥ ९२ ॥

अर्थ—जिसकी साध्य के साथ व्याप्ति निश्चित है, ऐसे हेतु के प्रयोग से उदाहरणादिक के बिना ही बुद्धिमान लोग व्याप्ति का निश्चय कर लेते हैं, इसलिये विद्वानों की अपेक्षा उदाहरणादिक के प्रयोग की आवश्यकता नहीं हैं ॥९२॥

संस्कृतार्थ—उदाहरणादिकं विनैव तथोपपत्तिमतो ऽन्याथानुपपत्तिमतो वा हेतोः प्रयोगेणैव व्युत्पन्ना व्याप्तिं गृह्णन्ति, अतस्तदपेक्षयोदाहरणादिप्रयोगावश्यकता नो विद्यते ॥९२॥

दृष्टान्तादिक के प्रयोग की साध्य की सिद्धि के प्रति विफलता—

तावता च साध्यसिद्धिः ॥ ९३ ॥

अर्थ—उस साध्याविनाभावी हेतु के प्रयोग से ही साध्य की सिद्धि हो जाती है, इसलिये साध्य की सिद्धि में दृष्टान्तादिक की कोई जरूरत नहीं होती ॥९३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृतार्थं—तस्य साध्याविनाभाविनो हेतोः प्रयोगादेव साध्यसिद्धि र्जायते। अतः साध्यसिद्धौ दृष्टान्तादयो नोपयुक्ताः ॥९३॥

पक्षप्रयोगसाफल्यम्, पक्ष के प्रयोग की सफलता—

तेन पक्षस्तदाधारसूचनायोक्तः ॥९४॥

अर्थ—जब साध्य के बिना नहीं होने वाले हेतु के प्रयोग से ही साध्य की सिद्धि हो जाती है, तब उस हेतु (साधन) का स्थान दिखाने के लिये पक्ष का प्रयोग करना आवश्यक है ॥९४॥

संस्कृतार्थं—साध्याविनाभाविनो हेतोः प्रयोगादेव साध्यसिद्धि र्जायते ऽ तस्तस्य हेतोः आधार (स्थान) दर्शनार्थमेव पक्षप्रयोगः आवश्यकः ॥९४॥

आगम का स्वरूप और कारण—

आप्तवचनादिनिबन्धनमर्थज्ञानमागमः ॥९५॥

अर्थ—आप्त के वचन तथा अंगुलिसंज्ञा आदि से होने वाले अर्थ (तात्पर्य) ज्ञान को आगम (आगमप्रमाण) कहते हैं ॥९५॥

संस्कृतार्थं—यो यत्रावञ्चकः स तत्राप्तः। आप्तस्य वचनम् आप्तवचनम्। आदिशब्देनाङ्गुल्यादिसंज्ञापरिग्रहः। आप्तवचनमादि र्यस्य तत् तथोक्तम्। आप्तवचनादिनिबन्धनं कारणं यस्य तत् तथोक्तम्। तथा चाप्तवचनादिकारणत्वे सति अर्थज्ञानत्वं नाम आगमत्वमिति।

अर्थज्ञानमित्येतावदुच्यमाने प्रत्यक्षादावतिव्याप्तिः, अत उक्तं वाक्यनिबन्धनमिति। वाक्यनिबन्धनमर्थज्ञानमागमः इत्युच्यमाने ऽपि यादृच्छिकसम्वादिषु विप्रलम्भजन्यवाक्येषु सुप्तोन्मत्तादिजन्यवाक्येषु वा नदीतीरफलसंसर्गादिज्ञानेषु अतिव्याप्तिः, अत उक्तम् आप्तेति। आप्तवाक्यनिबन्धनज्ञानमित्युच्यमाने ऽपि आप्तवाक्यकर्मके श्रावणप्रत्यक्षे ऽतिव्याप्तिः, अतः उक्तमर्थेति ॥९५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वचन या शब्द से वास्तविक अर्थबोध होने का कारण—

सहजयोग्यतासंकेतवशाद्धि शब्दादयो वस्तुप्रतिप-त्तिहेतवः ॥९६॥

अर्थ—अर्थों में वाच्यरूप तथा शब्दों में वाचकरूप एक स्वाभाविक योग्यता होती है, जिसमें संकेत हो जाने से ही शब्दादिक पदार्थों के ज्ञान में हेतु हो जाते हैं ॥९६॥

संस्कृतार्थं—सहजा–स्वभावसम्भूता, योग्यता-शब्दार्थयो र्वाच्य-वाचकशक्तिः, तस्यां संकेतस्तस्य वशस्तस्मात् । तथा च शब्दार्थंनिष्ठवा-च्यवाचकशक्तिसंकेतग्रहणनिमित्तेन शब्दादयः स्पष्टरीत्या पदार्थज्ञानं जनयन्तीति भावः ॥९६॥

विशेषार्थं—'घट शब्द' में कम्बुग्रीवादि वाले घड़े को कहने की शक्ति है । और उस घड़े में कहे जाने की शक्ति है । जिस व्यक्ति के ऐसा संकेत हो जाता है कि यह शब्द घड़े को कहता है उस व्यक्ति को घट शब्द के सुनने मात्र से ही घड़े का ज्ञान हो जाता है और वह घड़े को शीघ्र ले भी आता है ॥९६॥

शब्द से अर्थावबोध होने का दृष्टान्त—

यथा मेर्वादयः सन्ति ॥९७॥

अर्थ—जैसे सुमेरु आदिक हैं । अर्थात् जैसे मेरुशब्द के कहने मात्र से ही जम्बूद्वीप के मध्यस्थित सुमेरु का ज्ञान हो जाता है, उसी प्रकार सर्वत्र शब्द से अर्थ का बोध हो जाता है ॥९७॥

संस्कृतार्थ—यथा मेर्वादयः सन्तीत्यादिवाक्यश्रवणात् सहजयोग्य-ताश्रयेण हेमाद्रिप्रभृतीनां बोधो जायते तथैव सर्वत्र शब्दादर्थावबोधो जायते ॥९७॥

इति तृतीयः परिच्छेदः समाप्तः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ चतुर्थः परिच्छेदः

प्रमाणविषयनिर्णयः, प्रमाण के विषय का निर्णय—

सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषयः ॥ १ ॥

अर्थ—सामान्य और विशेष स्वरूप अर्थात् द्रव्य और पर्याय स्वरूप वस्तु प्रमाण का विषय होता है ॥ १ ॥

संस्कृतार्थ—अनुगतप्रतीतिविषयत्वं नाम सामान्यत्वम् । व्यावृत्त-प्रतीतिविषयत्वं नाम विशेषत्वम्, सामान्यं च विशेषश्चेति सामान्य-विशेषौ, तौ आत्मानौ यस्य सः सामान्यविशेषात्मा, स तस्य प्रमाणस्य ग्राह्यो ऽर्थः इति तदर्थः । तथा च सामान्यविशेषोभयधर्मस्वरूपः प्रमाण-ग्राह्यः पदार्थः प्रमाणगोचरो भवतीति भावः ॥ १ ॥

विशेषार्थ—द्रव्य के बिना पर्याय और पर्याय के बिना द्रव्य किसी भी प्रमाण का विषय नहीं होता, किन्तु द्रव्य और पर्याय उभयस्वरूप पदार्थ प्रमाण का विषय होता है, एक एक को प्रमाण का विषय मानने में बहुत से दोष हैं ॥ १ ॥

वस्तु की अनेकान्तात्मकता के समर्थन में हेतु—

अनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्ययगोचरत्वात् पूर्वोत्तराकारपरिहा-रावाप्तिस्थितिलक्षणपरिणामेनार्थक्रियोपपत्तेश्च ॥ २ ॥

अर्थ—गौ गौ गौ इस प्रकार अन्वयरूप (यह वही है ऐसे) ज्ञान को अनुवृत्तप्रत्यय कहते हैं। तथा यह काली है, यह चितकबरी है इत्यादि भिन्न-भिन्न (यह वह नहीं है ऐसी) प्रतीति को व्यावृत्तप्रत्यय कहते हैं। पदार्थों के कार्य को अर्थक्रिया कहते हैं, जैसे घट की अर्थक्रिया जलाहरण करना है। अर्थ के पूर्व आकार का विनाश और उत्तर आकार का प्रादुर्भाव इन दोनों सहित स्थिति को परिणाम कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक ही वस्तु अनुवृत्तप्रत्यय तथा व्यावृत्तप्रत्यय का विषय होता है, इसलिये वस्तु अनेकान्तात्मक है। इस हेतु से वस्तु को तिर्यक्सामान्य और व्यतिरेकविशेषरूप सिद्ध किया है, तथा एक ही वस्तु में पूर्व आकार का त्याग और उत्तर आकार की प्राप्ति इन दोनों सहित स्थिति-रूप लक्षण वाले परिणाम से ही अर्थक्रिया बन सकने के कारण भी वस्तु अनेकान्तात्मक है। इस हेतु से वस्तु को ऊर्ध्वतासामान्य और पर्याय-विशेषरूप सिद्ध किया है।

अर्थक्रिया द्रव्य (सामान्य) और पर्याय (विशेष) दोनों रूप पदार्थों में ही बन सकती है; केवल द्रव्य अथवा पर्याय में नहीं, इससे सिद्ध होता है कि सामान्य और विशेष रूप पदार्थ ही प्रमाण का विषय होता है।

इसी प्रकार अनुवृत्तप्रत्यय का विषय सामान्य और व्यावृत्त प्रत्यय का विषय विशेष होता है। इसलिये भी सामान्य और विशेष उभयरूप पदार्थ ही प्रमाण का विषय सिद्ध होता है ॥ २ ॥

संस्कृतार्थ—अनुवृत्ताकारो हि गौः गौः गौरित्यादिप्रत्ययः। व्या-वृत्ताकारः—श्यामः, शवलः इत्यादिप्रत्ययः। पदार्थानां कार्यमर्थक्रिया। वस्तुतः पूर्वाकारविनाशः उत्तराकारावाप्तिश्चेत्युभयावस्थासहितस्थितिः परिणामः।

अनुवृत्तञ्च व्यावृत्तञ्च तौ च तौ प्रत्ययौ, तयोः गोचरः, तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात्। पूर्वोत्तराकारयोः यथासंख्येन परिहारावाप्तिः, तस्यां स्थितिः, सैव लक्षणं यस्य सः, स चासौ परिणामश्च, तेनार्थक्रियायाः उपपत्तिः, तस्याः। तथा च सादृश्यव्यावृत्तात्मकज्ञानविषयत्वात् पूर्वोत्तराकारपरि-त्यागप्राप्तिसहचरितध्रौव्यलक्षणपरिणत्या अर्थक्रियासिद्धेश्च वस्तु सामान्यविशेषात्मकम् अनेकधर्मात्मकम्वा सिद्धयति ॥ २ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामान्यभेदौ, सामान्य के भेद—

सामान्यं द्वेधा तिर्यगूर्ध्वताभेदात् । ३ ।

अर्थ— सामान्य के दो भेद हैं। तिर्यक्सामान्य और ऊर्ध्वता—सामान्य ॥ ३ ॥

संस्कृतार्थ—तिर्यक्सामान्यम् ऊर्ध्वतासामान्यञ्चेति सामान्यस्य द्वौ भेदौ स्तः ॥ ३ ॥

तिर्यक्सामान्य का स्वरूप वा दृष्टान्त—

सदृशपरिणामस्तिर्यक् खण्डमुण्डादिषु गोत्ववत् । ४ ।

अर्थ— समान परिणमन को तिर्यक्सामान्य कहते हैं। जैसे-खांडी, मुण्डी और शाबली आदि गायों में गोत्व सदृशपरिणमन है ॥ ४ ॥

संस्कृतार्थ— सादृश्यात्मको धर्मस्तिर्यक्सामान्यं प्रोच्यते, यथा खण्डमुण्डादिषु गोषु गोत्वम् ॥ ४ ॥

विशेषार्थ— सब गायों का परिणमन समान होता है, इसलिये सब ही को गोशब्द से व्यवहृत करते हैं। यहाँ गोत्व का अर्थ सदृशपरिणाम लिया है और वह प्रत्येक गाय में भिन्नता से रहता है, व्यक्तियों के समान ही संख्या वाला है, एक नहीं।

ऊर्ध्वतासामान्य का स्वरूप और दृष्टान्त—

परापरविवर्तव्यापिद्रव्यमूर्ध्वता मृदिव स्थासादिषु ।

अर्थ- पूर्व और उत्तर पर्याय में रहने वाले द्रव्य को ऊर्ध्वता-सामान्य कहते हैं। जैसे—स्थास और कुशूल आदि पर्यायों में मिट्टी रहती है। यहाँ यह मिट्टी ही ऊर्ध्वतासामान्य मानी जावेगी।

संस्कृतार्थ—परे ऽ परे च ये विवर्तास्तेषु व्याप्नोतीति परापरविवर्तव्यापि। तथा च पूर्वोत्तरपर्यायव्यापकत्वे सति द्रव्यत्वं नाम ऊर्ध्वता-सामान्यम्। यथा स्थासकोशकुशूलादिषु पर्यायेषु व्यापकत्वं मृत्तिका-द्रव्यम् ॥ ५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषस्य भेदौ, विशेष के भेद—

विशेषश्च । ६ ।

अर्थ—विशेष के भी दो भेद हैं।

संस्कृतार्थ— विशेषस्यापि द्वौ भेदौ विद्येते ॥ ६ ॥

विशेषभेदस्य नाम्नी, विशेष के भेदों के नाम—

पर्यायव्यतिरेकभेदात् । ७ ।

पर्यायो व्यतिरेकश्चेति द्वौ विशेषस्य भेदौ स्तः ॥ ७ ॥

पर्यायविशेष का स्वरूप वा उदाहरण—

एकस्मिन्द्रव्ये क्रमभाविनः परिणामाः पर्यायाः आत्मनि हर्षविषादादिवत् । ८ ।

अर्थ—एक द्रव्य में क्रम से होने वाले परिणामों को पर्याय कहते हैं जैसे-आत्मा में हर्ष और विषाद आदि ॥ ८ ॥

संस्कृतार्थ— एकस्मिन्द्रव्ये क्रमशः समुत्पद्यमाना भावा पर्याय-विशेषाः प्रोच्यन्ते । यथात्मनि हर्षविषादादयो भावाः ॥ ८ ॥

व्यतिरेकविशेष का लक्षण वा उदाहरण—

अर्थान्तरगतो विसदृशपरिणामो व्यतिरेको गोमहिषा-दिवत् । ९ ।

अर्थ—एक पदार्थ की अपेक्षा दूसरे पदार्थों में रहने वाले विसदृश परिणाम को व्यतिरेक कहते हैं। जैसे—गो से महिष (भैंसा) में एक विलक्षण (भिन्न) ही परिणमन होता है ॥ ९ ॥

संस्कृतार्थ—अन्ये अर्थाः अर्थान्तराणि, तानि गतः इत्यर्थान्तरगतः। विसदृशश्चासौ परिणामो विसदृशपरिणामः। तथा च भिन्नभिन्नपदार्थ-निष्ठत्वे सति विलक्षणधर्मत्वं नाम व्यतिरेकत्वम् । यथा पारस्परिक-वैलक्षण्यविशिष्टा गोमहिषादयस्तिर्यञ्चः ।

इति चतुर्थः परिच्छेदः समाप्तः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ पञ्चमः परिच्छेदः

प्रमाणफलनिर्णय., प्रमाण के फल का निर्णय—

अज्ञाननिवृत्ति र्हानोपादानोपेक्षाश्च फलम् ॥१॥

अर्थ --प्रमाण का साक्षात् फल–अज्ञान की निवृत्ति (नाश) है तथा परम्परा फल–हान (त्याग) उपादान (ग्रहण) और उपेक्षा (उदासीनता) है ॥१॥

संस्कृतार्थ— अज्ञानस्य निवृत्ति. अज्ञाननिवृत्तिः । प्रमेयाज्ञाननिरास इत्यर्थः । हानं च उपदानं च उपेक्षा चेति हानोपादानोपेक्षाः-त्यागग्रहणानादराः इत्यर्थः । तद्यथा-प्रमाणस्य फलं द्विविधं, साक्षात्फलं परम्पराफलं चेति । तत्र साक्षात्फलम् अज्ञाननिवृत्तिः, परम्पराफलं च-क्वचिद्वस्तुत्यागः, क्वचिद्वस्तुग्रहणं, क्वचिद्वस्त्वनादरो वा । त्यागादीनां प्रमेयनिश्चयोत्तरकालभावित्वात् ॥१॥

अर्थ— प्रमाण के द्वारा पहले अज्ञान की निवृत्ति होती है। बाद में किसी वस्तु का त्याग अथवा ग्रहण होता है या उसमें उपेक्षाभाव होता है, इसलिये इन तीनों को परम्पराफल कहते हैं और अज्ञान की निवृत्ति को साक्षात् फल कहते हैं ॥१॥

प्रमाणफलस्य व्यवस्था, प्रमाण के फल की व्यवस्था—

प्रमाणादभिन्नं भिन्नं च ॥२॥

अर्थ—वह फल प्रमाण से कथञ्चित् अभिन्न तथा कथञ्चित् भिन्न होता है ॥२॥

संस्कृतार्थ—तत्प्रमाणफलम् संज्ञास्वरूपादिभेदापेक्षया कथञ्चित्प्रमाणाद् भिन्नं विद्यते । प्रमाणस्य करणरूपत्वात्; प्रमितेश्च क्रियारूपत्वादिति । कथञ्चिच्चाभिन्नं विद्यते ॥२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमाणफल की प्रमाण से अभिन्नता का समर्थन—

यः प्रमिमीते स एव निवृत्ताज्ञानो जहात्यादत्ते उपेक्षते चेति प्रतीतेः ॥३॥

अर्थ—जो जानता है, उसी का अज्ञान दूर होता है, वही किसी वस्तु को छोड़ता अथवा ग्रहण करता है या मध्यस्थ हो जाता है। इसलिये एक ज्ञाता की अपेक्षा से प्रमाण और प्रमाणफल दोनों अभिन्न हैं, तथा प्रमाण और उसके फल की भेदप्रतीति होती है, इसलिये दोनों भिन्न हैं ॥३॥

संस्कृतार्थ—तद्धि प्रमाणफलम् एकप्रमातृसम्बन्धापेक्षया कथञ्चित्प्रमाणादभिन्नं विद्यते। तद्यथा—यः आत्मा पदार्थं जानाति, स एव पदार्थविषयिकाज्ञानरहितः सन् पदार्थं त्यजति, गृह्णाति, उपेक्षते चेति प्रतीतेः ॥३॥

इति पञ्चमः परिच्छेदः समाप्तः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ षष्ठः परिच्छेदः

आभासवर्णनम्, आभासों का वर्णन—

ततोऽन्यत्तदाभासम् ॥१॥

अर्थ—पूर्व वर्णित प्रमाण के स्वरूप, संख्या, विषय तथा फल से विपरीत प्रमाणस्वरूप आदिकों को स्वरूपाभास, संख्याभास, विषयाभास और फलाभास कहते हैं ॥१

संस्कृतार्थ—पूर्वोक्तप्रमाणस्य स्वरूपसंख्याविषयफलेभ्यो विपरीतानि (भिन्नानि) स्वरूपसंख्याविषयफलानि स्वरूपाभाससंख्याभासविषयाभासाः प्रोच्यन्ते ॥१॥

स्वरूपाभास या प्रमाणाभास के भेद—

अस्वसंविदितगृहीतार्थदर्शनसंशयादयः प्रमाणाभासाः ॥१॥

अर्थ—अस्वसंविदित, गृहीतार्थ, दर्शन, संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय को प्रमाणाभास कहते हैं ॥२॥

संस्कृतार्थ—अस्वसम्विदितं, गृहीतार्थज्ञानं, दर्शनं, संशयः, विपर्ययः, अनध्यवसायश्चेति सप्त प्रमाणाभासाः प्रोच्यन्ते ॥२॥

अस्वसम्विदितादि के प्रमाणाभास होने में हेतु—

स्वविषयोपदर्शकत्वाभावात् ॥३॥

अर्थ—अपने विषय के निश्चायक नहीं होने से ये अस्वसम्विदितादि प्रमाण नहीं है, प्रमाणाभास हैं ॥३॥

संस्कृतार्थ—अस्वसम्विदितादयः स्वस्वविषयनिश्चायकत्वाभावात् प्रमाणाभासाः प्रोच्यन्ते ॥३॥

पुरुषान्तरपूर्वार्थगच्छत्तृणस्पर्शस्थाणुपुरुषादिज्ञानवत् ।४।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—दूसरे पुरुष के ज्ञान की तरह अस्वसम्विदितज्ञान, पूर्व में जाने हुये पदार्थ के ज्ञान की तरह गृहीतार्थज्ञान, चलते हुये पुरुष के तृणस्पर्श के ज्ञान की तरह दर्शन, यह स्थाणु है या पुरुष ? ऐसे ज्ञान की तरह संशयज्ञान, सीप में चांदी के ज्ञान की तरह विपर्ययज्ञान और चलते हुये के तृणस्पर्श के ज्ञान की तरह अनध्यवसाय अपने-अपने विषय को निश्चय रूप से नहीं जानते इसलिये वे प्रमाणाभास हैं ॥४॥

संस्कृतार्थ—यथा पुरुषान्तरज्ञानं, धारावाहिज्ञानं, गच्छत्तृणस्पर्शज्ञानं तथा स्थाणुपुरुषज्ञानम् इत्यादिज्ञानानां स्वस्वविषयनिश्चायकत्वाभावेन प्रमाणाभासत्वमुत्पद्यते तथा अस्वसम्विदितादिज्ञानानामपि प्रमाणाभासत्वं सिध्यति ॥४॥

सन्निकर्ष के प्रमाणपने का दृष्टान्त से निषेध--

चक्षूरसयो द्रव्ये संयुक्तसमवायवच्च ॥५॥

अर्थ—जिस प्रकार द्रव्य में चक्षु और रस का संयुक्तसमवाय होता हुआ भी ज्ञानरूपी फल को पैदा नहीं करता है, उसी प्रकार द्रव्य में चक्षु और रूप का संयुक्तसमवाय भी ज्ञानरूपी फल को पैदा नहीं कर सकता है, इसलिये सन्निकर्ष प्रमाण नहीं है ॥५॥

संस्कृतार्थ—यथा घटपटादिपदार्थेषु चक्षूरसयोः संयुक्तसमवायाख्यसन्निकर्षः विद्यमानोऽपि न प्रमाणं तस्याचेतनत्वेन प्रमितिक्रियाम्प्रति करणत्वाभात्। किञ्च असन्निकृष्टस्यैव चक्षुषो रूपजनकत्वं दृश्यते, अप्राप्यकारित्वात्तस्य। विशेषश्चात्र न्यायदीपकाग्रन्थाद् अग्रिमलेखमालया वा विज्ञेयः ॥५॥

प्रत्यक्षाभासलक्षणम्, प्रत्यक्षाभास का लक्षण—

अवैशद्ये प्रत्यक्षं तदाभासं, बौद्धस्याकस्माद् धूमदर्शनाद् वह्निविज्ञानवत् ॥६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—अविशदज्ञान को प्रत्यक्ष मानना प्रत्यक्षाभास है। जैसे कि बौद्ध लोग अकस्मात् धूम देखने से पैदा हुये अग्नि के ज्ञान को प्रत्यक्ष मानते हैं। उनका यह ज्ञान ठीक नहीं है, प्रत्यक्षाभास है ॥६॥

संस्कृतार्थ—अवैशद्ये प्रत्यक्षं प्रत्यक्षाभासमाहुः। यथा बौद्धस्याकस्माद् धूमदर्शनाद् वह्निविज्ञानं प्रत्यक्षाभासो विज्ञेयः ॥६॥

परोक्षाभास का स्वरूप—

वैशद्ये ऽपि परोक्षं तदाभासं, मीमांसकस्य करणज्ञानवत् ।

अर्थ—विशदज्ञान को परोक्ष मानना परोक्षाभास है। जैसा कि मीमांसक करणज्ञान को परोक्ष मानते हैं। यह ज्ञान उनका परोक्ष नहीं है, परोक्षाभास है ॥७॥

संस्कृतार्थ—वैशद्ये ऽपि परोक्षज्ञानं परोक्षाभासो व्यावर्ण्यते। यथा मीमांसकस्य करणज्ञानं परोक्षाभासो विज्ञेयः ॥७॥

स्मरणाभास का लक्षण—

अतस्मिंस्तदिति ज्ञानं स्मरणाभासं, जिनदत्ते स देवदत्तो यथा ॥८॥

अर्थ—जिस पदार्थ का कभी धारणारूप अनुभव नहीं हुआ था, उसके अनुभव को स्मरणाभास कहते हैं। जैसे कि– जिनदत्त का स्मरण करके कहना कि वह देवदत्त। यहाँ देवदत्त को देखा नहीं था और स्मरण किया है, इसलिये यह स्मरण झूठा है।

संस्कृतार्थ—अतस्मिन् तदिति ज्ञानं स्मरणाभासः। यथा जिनदत्ते स्मृते स देवदत्तः इति ज्ञानं स्मरणाभासः ॥८॥

प्रत्यभिज्ञानाभास का स्वरूप—

सदृशे तदेवेदं, तस्मिन्नेव तेन सदृशम्, यमलकवदित्यादि प्रत्यभिज्ञानाभासम् ॥ ९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—सदृश पदार्थ में 'यह वही है' ऐसा ज्ञान तथा उसी पदार्थ में 'यह उसके समान है' ऐसा ज्ञान प्रत्यभिज्ञानाभास कहलाता है। जैसे एक साथ पैदा हुये दो मनुष्यों में उल्टा ज्ञान हो जाता है ॥९॥

संस्कृतार्थ—सदृशे वस्तुनि तदेवेति तथा तस्मिन्नेव वस्तुनि तत्सदृशमिति ज्ञानम् अथवा सादृश्ये एकत्वस्य, एकत्वे वा सादृश्यस्य ज्ञानं प्रत्यभिज्ञानाभासः कथ्यते। एवमेव वैलक्षण्यादिष्वपि प्रत्येतव्यम् ॥९॥

तर्काभासलक्षणम्, तर्काभास का लक्षण—

(यावांस्तत्पुत्रः स श्यामो यथा)

असम्बद्धे तज्ज्ञानं तर्काभासम् ॥ १० ॥

अर्थ—अविनाभावरहित में अविनाभाव के ज्ञान या जिन पदार्थों में परस्पर व्याप्ति नहीं है उनमें होने वाले व्याप्तिज्ञान को तर्काभास कहते हैं। जैसे किसी के किसी एक पुत्र को श्याम (काला) देखकर 'इसके जितने पुत्र हैं तथा होवेंगे, वे सभी श्याम हैं या होंगे, ऐसी व्याप्ति बनाना तर्काभास है ॥१०॥

संस्कृतार्थ—अविनाभावरहितेऽविनाभावज्ञानं, मिथोव्याप्तिविहीने व्याप्तिज्ञानम्वा तर्काभासो निगद्यते। यथा कस्यचिदेकम्पुत्रं कृष्णमालोक्य यावन्तोऽस्य पुत्राः सन्ति भविष्यन्ति वा ते सर्वे कृष्णाः सन्ति भविष्यन्ति वेति ज्ञानं तर्काभासः ॥१०॥

अनुमानाभासस्वरूपम् अनुमानाभास का स्वरूप—

इदमनुमानाभासम् ॥११॥

संस्कृतार्थ—पक्षाभासः, हेत्वाभासो, दृष्टान्ताभासश्चेत्यादयः अनुमानाभासा विज्ञेयाः ॥११॥

विशेषार्थ—अवयवाभासों के दिखाने से अनुमानस्वरूपाभास स्वयं सिद्ध हो जाता है, क्योंकि अनुमान अवयवों से भिन्न कोई वस्तु नहीं है। इसलिये आगे अवयवाभास बताये हैं ॥११॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पक्षाभासस्वरूपम् , पक्षाभास का स्वरूप–

तत्रानिष्टादिः पक्षाभासः । १२ ।

अर्थ—अनिष्ट, बाधित और सिद्ध पक्ष को पक्षाभास कहते हैं ।

संस्कृतार्थ—अनिष्टो, बाधितः, सिद्धश्च पक्षः पक्षाभासः प्रोच्यते ।

अनिष्टपक्षाभास का उदाहरण–

अनिष्टो मीमांसकस्यानित्यः शब्दः । १३ ।

अर्थ—मीमांसक की अपेक्षा 'शब्द अनित्य है' यह पक्ष अनिष्टपक्षाभास है । क्योंकि मीमांसक शब्द को नित्य मानता है, अनित्य मानना उसके अनिष्ट है ॥ १३ ॥

संस्कृतार्थ—मीमांसकेन शब्दो नित्यो मतः । अतस्तस्य 'शब्दो ऽनित्यः' इति कथनम् अनिष्टः पक्षाभासो जायते ॥ १३ ॥

सिद्धपक्षाभासोदाहरणम् , सिद्धपक्षाभास का उदाहरण–

सिद्धः श्रावणः शब्दः ॥ १४ ॥

अर्थ—'शब्द, कर्ण इन्द्रिय का विषय होता है' यह पक्ष सिद्ध नाम का पक्षाभास है । क्योंकि सुनने में आया सो श्रावण सिद्ध है ही फिर शब्द को पक्ष बना कर सिद्ध करना निरर्थक है ।

संस्कृतार्थ—'शब्दः श्रावणः इति पक्षः सिद्धपक्षाभासो विज्ञेयः । यतः शब्दः श्रुतः, अतः श्रावणः सिद्ध एव विद्यते, पुनः पक्षं मत्वा सिद्धकरणं निरर्थकमेव ॥ १४ ॥

बाधितपक्षाभासभेदः, बाधितपक्षाभास के भेद–

बाधितः प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनैः ॥ १५ ॥

अर्थ—बाधितपक्षाभास के पाँच भेद हैं । प्रत्यक्षबाधित, अनुमानबाधित, आगमबाधित, लोकबाधित वा स्ववचनबाधित ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रत्यक्षबाधित का उदाहरण—

तत्र प्रत्यक्षबाधितो यथा, अनुष्णो ऽग्नि र्द्रव्यत्वा-ज्जलवत् ॥ १६ ॥

अर्थ—अग्नि ठण्डी होती है, क्योंकि वह द्रव्य है। जो द्रव्य होता है वह ठण्डा होता है जैसे जल। यहाँ 'अग्नि ठण्डी होती है' यह पक्ष स्पार्शनप्रत्यक्ष से बाधित है, क्योंकि छूने से अग्नि गर्म मालूम होती है ॥ १६ ॥

संस्कृतार्थ—अनुष्णो ऽग्निः द्रव्यत्वात् जलवत्। अत्र 'अग्नि-रनुष्णः प्रतीयते। अतो ऽयं पक्षः स्पार्शनेन प्रत्यक्षेण बाधितो विद्यते ॥१६॥

अनुमानबाधितपक्षाभास का उदाहरण—

अपरिणामी शब्दः कृतकत्वात् ॥ १७ ॥ घटवत्

अर्थ—शब्द अपरिणामी (नित्य) होता है क्योंकि वह किया जाता है, जो किया जाता है वह अपरिणामी होता है, जैसे घट। यह अनुमानबाधित पक्षाभास का उदाहरण है। क्योंकि यहाँ पक्ष में 'शब्द परिणामी (अनित्य) होता है, क्योंकि वह किया जाता है, जो किया जाता है; वह परिणामी होता है, जैसे घट। इस अनुमान से बाधा आती है ॥ १७ ॥

संस्कृतार्थ—अपरिणामी शब्दः कृतकत्वात्। यो यः कृतको विद्यते स सः अपरिणामी, यथा घटः। अनुमानबाधितपक्षाभासोदाहरणमिदम्। यतो ऽत्र पक्षे 'शब्दः परिणामी, कृतकत्वात्, यो यः कृतकः; स सः परिणामी, यथा घटः' इत्यनुमानेन बाधा आयाति ॥ १७ ॥

आगमबाधितपक्षाभास का उदाहरण—

प्रेत्यासुखदो धर्मः, पुरुषाश्रितत्वादधर्मवत् ॥ १८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ- धर्म (पुण्य) परलोक में दुःखदायी होता है, क्योंकि वह पुरुष के आश्रय से होता है। जो जो पुरुष के आश्रय से होता है वह वह दुःखदायी होता है, जैसे अधर्म (पाप)। यह पक्ष आगम से बाधित है, क्योंकि आगम में धर्म सुखदायी और अधर्म दुःखदायी बतलाया गया है। यद्यपि दोनों पुरुष के आश्रय से होते हैं, तथापि वे भिन्नस्वभाव वाले हैं ॥ १८ ॥

संस्कृतार्थ—प्रेत्यासुखदो धर्मः, पुरुषाश्रितत्वात् अधर्मवत्। यो यः पुरुषाश्रितः स सः दुःखदायी, यथा अधर्मः। अत्रायं पक्षः आगमबाधितो वर्तते। यतः आगमे धर्मः सुखदायी प्रोक्तः, अधर्मश्च दुःखदायी प्रोक्तः। यद्यपि द्वावपीमौ पुरुषाश्रितौ; तथापि भिन्नस्वभावौ विद्येते ॥ १८ ॥

लोकबाधितपक्षाभास का उदाहरण—

शुचि नरशिरःकपालं, प्राण्यंगत्वाच्छंखशुक्तिवत् ॥१९॥

अर्थ – मनुष्य के शिर का कपाल (खोपड़ी) पवित्र होता है, क्योंकि वह प्राणी का अङ्ग है। जो प्राणी का अङ्ग होता है वह पवित्र होता है, जैसे शंख और सीप। यह पक्ष लोकबाधित है, क्योंकि लोक में प्राणी का अङ्ग होते हुये भी कोई चीज पवित्र और कोई अपवित्र मानी गई है ॥ १९ ॥

संस्कृतार्थ—शुचि नरशिरः कपालं, प्राण्यङ्गत्वात्, शंखशुक्तिवत्। यच्च प्राण्यङ्गं तत् पवित्रं, यथा शंखः, शुक्तिश्चेति। अत्रायं पक्षो लोकबाधितो विद्यते। यतो लोके प्राण्यङ्गत्वे ऽपि किञ्चिद् वस्तु पवित्रं; किञ्चिच्चापवित्रं मतम् ॥ १९ ॥

स्ववचनबाधितपक्षाभास का उदाहरण—

माता मे वन्ध्या, पुरुषसंयोगे ऽप्यगर्भत्वात् प्रसिद्धवन्ध्यावत् ॥ २० ॥

Ganesh Varnj Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—मेरी माता वन्ध्या है, क्योंकि पुरुष का संयोग होने पर भी उसके गर्भ नहीं रहता। जिसके पुरुष के संयोग होने पर भी गर्भ नहीं रहता, वह वन्ध्या कहलाती है, जैसे प्रसिद्ध वन्ध्या स्त्री। स्वयं मौजूद है, अपनी माता भी स्वीकार कर रहा है फिर भी कहता है, कि मेरी माता वन्ध्या है। यह पक्ष उसी के वचन (मेरी माता) से बाधित है ॥ २० ॥

संस्कृतार्थ—माता मे वन्ध्या, पुरुषसंयोगे ऽप्यगर्भत्वात् प्रसिद्ध-वन्ध्यावत्। स्वस्मिन् पुत्रत्वं, जनन्यां मातृत्वं वा स्वीकुर्वन्नपि कथयति यन्माता मे वन्ध्या। अतो ऽयं पक्षः स्ववचनबाधितो विद्यते ॥ २० ॥

हेत्वाभासभेदाः, हेत्वाभास के भेद—

हेत्वाभासा असिद्धविरुद्धानैकान्तिकाकिञ्चित्कराः

अर्थ—असिद्ध, विरुद्ध अनैकान्तिक और अकिञ्चित्कर ये चार हेत्वाभास के भेद हैं। असिद्धः, विरुद्धः, अनैकान्तिकः, अकिञ्चित्कर श्चेति चत्वारो हेत्वाभासा विद्यन्ते ॥ २१ ॥

असिद्धहेत्वाभास के भेद और स्वरूप—

असत्सत्तानिश्चयो ऽसिद्धः। २२।

अर्थ—स्वरूपासिद्ध और सन्दिग्धासिद्ध ये दो असिद्ध हेत्वाभास के भेद हैं। जिस हेतु की सत्ता का अभाव हो उस हेतु को स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास कहते हैं और पक्ष में जिस हेतु का निश्चय न हो उसे सन्दिग्धा-सिद्ध हेत्वाभास कहते हैं ॥ २२ ॥

संस्कृतार्थ—स्वरूपासिद्धः, सन्दिग्धासिद्धश्चेति द्वौ असिद्धहेत्वा-भासभेदौ स्तः। तत्राविद्यमानसत्ताको हेतुः स्वरूपासिद्धः। अविद्यमान-निश्चयो वा हेतुः सन्दिग्धासिद्धो हेत्वाभासो विज्ञेयः ॥ २२ ॥

स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास का दृष्टान्त—

अविद्यमानसत्ताकः, परिणामी शब्दः चाक्षुषत्वात्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—शब्द परिणामी (अनित्य) होता है, क्योंकि वह चक्षु से जाना जाता है। यहां 'चक्षु से जाना जाता है' यह हेतु स्वरूप से ही असिद्ध है, क्योंकि शब्द चक्षु से नहीं, किन्तु कर्ण से जाना जाता है ॥२३॥

संस्कृतार्थ— परिणामी शब्दश्चाक्षुषत्वात् । अत्रायं चाक्षुषत्वं हेतुः स्वरूपासिद्धो विद्यते । यतः शब्दो नेत्राभ्यां ज्ञायते, किन्तु कर्णाज्ज्ञायते । अतोऽविद्यमानसत्ताकत्वेन स्वरूपासिद्धो जातः ॥२३॥

२२ वें सूत्र में चाक्षुषत्वहेतु के स्वरूपासिद्ध होने में हेतु--

स्वरूपेणासत्वात् ॥२४॥

अर्थ—शब्द कर्ण से जाना जाता है, चक्षु से नहीं। इसलिये शब्द चक्षु से जाना जाता है यह कहना स्वरूप से ही ठीक नहीं है ॥२४॥

संस्कृतार्थ—शब्दः कर्णेन ज्ञायते, चक्षुषा नो । अतः शब्दस्य चाक्षुषत्वव्यावर्णनं स्वरूपेणैव नोचितम् ॥२४॥

सन्दिग्धासिद्धोदाहरणम्, सन्दिग्धासिद्ध हेत्वाभास का उदाहरण—

अविद्यमाननिश्चयो मुग्धबुद्धिं प्रत्यग्निरत्र धूमात् ॥२५॥

अर्थ—किसी अज्ञान व्यक्ति से यह कहना कि यहां अग्नि है, क्योंकि धूम है। यहां यह धूमहेतु उसके 'सन्दिग्धासिद्ध' हेत्वाभास है ॥२५॥

संस्कृतार्थ—मुग्धम्प्रति 'अग्निरत्र धूमात्' इति कथनम्' सन्दिग्धासिद्धो हेत्वाभासो विज्ञेयः ॥२५॥

धूमत्वहेतु के सन्दिग्धासिद्ध हेत्वाभास होने में हेतु—

तस्य बाष्पादिभावेन भूतसंघाते सन्देहात् ॥२६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ— मुग्धबुद्धि के प्रति 'धूम' हेतु इसलिये सन्दिग्धासिद्ध है कि उसे भूतसंघात में वाष्पादि देखने से सन्देह हो जाता है; कि यहां भी अग्नि है अथवा होगी ॥२६॥

संस्कृतार्थ—मुग्धबुद्धिम्प्रति धूमहेतुरतः स्वरूपासिद्धो हेत्वाभासो विद्यते, यतस्तस्य भूतसंघाते वाष्पादिदर्शनात् सन्देह उत्पद्यते। यदत्र वह्निः वर्तते, वर्तेत वा ॥२६॥

विशेषार्थ—भूतसंघात=चूल्हे से उतारी हुई बटलोई। उसमें पृथिवी, जल, अग्नि, वायु चारों ही रहते हैं और भाप भी निकलती रहती है ॥२६॥

असिद्धहेत्वाभास का भेदान्तर—

सांख्यम्प्रति परिणामी शब्दः कृतकत्वात् ॥२७॥

अर्थ—सांख्य के प्रति यह कहना कि शब्द परिणामी होता है, क्योंकि वह किया जाता है। यह हेतु सांख्य के प्रति असिद्ध हेत्वाभास है ॥२७॥

संस्कृतार्थ—परिणामी शब्दः कृतकत्वादिति कथनं सांख्यम्प्रत्यसिद्धो हेत्वाभासो विद्यते ॥२७॥

उपर्युक्त सत्ताइसवें सूत्र के कथन की पुष्टि—

तेनाज्ञातत्वात् ॥२८॥

अर्थ—सांख्य कृतकता (कृतकपने) को मानता ही नहीं है, क्योंकि उसके यहां आविर्भाव और तिरोभाव ही प्रसिद्ध हैं, उत्पत्ति और विनाश नहीं। इसलिये शब्द का कृतकपना उसकी दृष्टि में असिद्ध हेत्वाभास है ॥२८॥

संस्कृतार्थ—सांख्यसिद्धान्ते आविर्भावतिरोभावावेव प्रसिद्धौ, नोत्पत्तिविनाशौ। अतः शब्दस्य कृतकत्वं तद्दृष्टौ असिद्धो हेत्वाभासो जायते ॥२८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विरुद्धहेत्वाभास का स्वरूप--

विपरीतनिश्चिताविनाभावो विरुद्धोऽपरिणामी शब्दः कृतकत्वात् ॥२९॥

अर्थ---साध्य से विपरीत (विपक्ष) के साथ जिस हेतु की व्याप्ति हो, उस हेतु को विरुद्धहेत्वाभास कहते हैं। जैसे शब्द अपरिणामी (नित्य) होता है, क्योंकि वह कृतक (किया गया) है। यहां किया जाना हेतु अपने साध्यभूत नित्यत्व से विपरीत अनित्यत्व के साथ रहता है, इसलिये यह विरुद्ध हेत्वाभास है ॥२९॥

संस्कृतार्थ– साध्यविरुद्धेन (विपक्षेण) सह निश्चिताविनाभावो हेतुः विरुद्धो हेत्वाभासो निरूप्यते। यथा-अपरिणामी शब्दः कृतकत्वात्। अत्रास्य हेतोरपरिणामित्वविरुद्धेन परिणामित्वेन सह व्याप्तिः विद्यते, अतोऽयं हेतुः विरुद्धहेत्वाभासः सुसिद्धः ॥२९॥

विशेषार्थ– इस अनुमान में अपरिणामित्व साध्य है, परन्तु कृतकत्व हेतु उसके साथ व्याप्ति नहीं रखता। किन्तु उससे उल्टे परिणामीपने के साथ व्याप्ति रखता है, इसलिये यह विरुद्ध हेत्वाभास है ॥२९॥

अनैकान्तिकहेत्वाभास का स्वरूप---

विपक्षेऽप्यविरुद्धवृत्तिरनैकान्तिकः ॥३०॥

अर्थ---जो हेतु पक्ष और सपक्ष में रहता हुआ विपक्ष (साध्य के अभाव) में भी रहता है उसे अनैकान्तिक हेत्वाभास कहते हैं ॥३०॥

संस्कृतार्थ---पक्षे, सपक्षे वा विद्यमानोऽपि विपक्षवृत्तिः हेतुरनैकान्तिको हेत्वाभासः ॥३०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विशेषार्थ—सन्दिग्ध साध्य वाले धर्मी को पक्ष कहते हैं। साध्य के समान धर्म वाले धर्मी को सपक्ष कहते हैं। और साध्य से विरुद्ध धर्म वाले धर्मी को विपक्ष कहते हैं। जो हेतु इन तीनों में रहता है उसे अनैकान्तिक या व्यभिचारी हेतु कहते हैं। उसके दो भेद हैं, निश्चित-विपक्षवृत्ति और शंकितवृत्ति ॥३०॥

निश्चितविपक्षवृत्ति का उदाहरण—

निश्चितविपक्षवृत्तिरनित्यः शब्दः प्रमेयत्वात् घटवत् ॥३१॥

अर्थ—शब्द अनित्य होता है; क्योंकि वह प्रमेय है। जो प्रमेय होता है, वह अनित्य होता है, जैसे घट। यह प्रमेयत्व हेतु, पक्ष शब्द में और सपक्ष घट में रहता हुआ विपक्ष आकाश में भी रहता है, इसलिये व्यभिचारी है। परन्तु उसका विपक्ष में रहना निश्चित है इसलिये उसे निश्चितविपक्षवृत्ति कहते हैं ॥३१॥

संस्कृतार्थ—अनित्यः शब्दः प्रमेयत्वाद् घटवत्। अयं प्रमेयो हेतुः पक्षे शब्दे, सपक्षे घटे वा विद्यमानो ऽपि विपक्षे आकाशे ऽपि तिष्ठति, अतो ऽनैकान्तिकः प्रोच्यते। विपक्षे च तस्य वृत्तिः निश्चिता, अतो निश्चितविपक्षवृत्तिरुच्यते ॥३१॥

निश्चितविपक्षवृत्तित्व की पुष्टि—

आकाशे नित्ये ऽप्यस्य निश्चयात् ॥३२॥

अर्थ—नित्य आकाश (विपक्ष) में भी इस (प्रमेयत्वहेतु) का निश्चय है, इसलिये प्रमेयत्वहेतु निश्चित निश्चितविपक्षवृत्ति है ॥३०॥

संस्कृतार्थ—विपक्षे-नित्ये आकाशे ऽप्यस्य प्रमेयत्वहेतोः निश्चयादयं निश्चितविपक्षवृत्तिरुच्यते ॥३२॥

शंकितविपक्षवृत्ति का उदाहरण—

शंकितविपक्षवृत्तिस्तु नास्ति सर्वज्ञो वक्तृत्वात् ॥३३॥

अर्थ—सर्वज्ञ नहीं है, क्योंकि वह बोलने वाला है। परन्तु 'बोलने वाला' यह हेतु रह जाय और सर्वज्ञपना भी रह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाय, इन दोनों बातों में कोई विरोध नहीं है, इसलिये इस हेतु को शंकितव्यभिचारी विपक्षवृत्ति कहते हैं। अर्थात् इसके विपक्ष में रहने की शंका है ॥३३॥

संस्कृतार्थ—नास्ति सर्वज्ञो वक्तृत्वात्। सत्यपि वक्तृत्वे सर्वज्ञत्वस्याविरोधः। अर्थादस्य हेतोः विपक्षे वृत्तिः सम्भाव्यते, अत एवायं हेतुः शंकितविपक्षवृत्ति विद्यते ॥३३॥

शंकितविपक्षवृत्तित्व की पुष्टि—

सर्वज्ञत्वेन वक्तृत्वाविरोधात् ॥३४॥

अर्थ—सर्वज्ञ पने के साथ वक्तापने का कोई विरोध नहीं है। इसलिये सर्वज्ञ के सद्भावरूप विपक्ष में भी यह हेतु रह सकता है ॥३४॥

संस्कृतार्थ—सर्वज्ञत्वेन वक्तृत्वाविरोधादयं हेतुः सर्वज्ञसद्भावरूपे विपक्षेऽपि सम्भवेत्। अतएवास्य शंकितविपक्षवृत्तिसंज्ञा सार्थिकैव॥३४॥

अकिञ्चित्करहेत्वाभास का स्वरूप—

सिद्धे प्रत्यक्षादिबाधिते च साध्ये हेतुरकिञ्चित्करः॥३५॥

अर्थ—साध्य के सिद्ध होने पर तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणों से बाधित होने पर हेतु कुछ भी नहीं कर सकता, इसलिये वह अकिञ्चित्कर हेत्वाभास कहा जाता है ॥३५॥

संस्कृतार्थ—साध्ये सिद्धे, प्रत्यक्षादिबाधिते वा सति हेतुः किञ्चिदपि कर्तुं नो शक्नुयात्,अतएव सोऽकिञ्चित्करःहेत्वाभासः प्रोच्यते॥३५॥

सिद्धसाध्य अकिञ्चित्कर का उदाहरण—

सिद्धः श्रावणः शब्दः शब्दत्वात् ॥३६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ— शब्द श्रावणज्ञान का विषय होता है, क्योंकि वह शब्द है।

संस्कृतार्थ—श्रावण: शब्द: शब्दत्वात्। अत्रायं हेतु: सिद्धासाध्योऽकिञ्चित्करहेत्वाभासो विद्यते ॥३६॥

शब्दत्वहेतु के अकिञ्चित्कर होने में हेतु—

किञ्चिदकरणात् ॥३७॥

अर्थ— यहां यह शब्दत्वहेतु कुछ भी नहीं कर सकता है, क्योंकि शब्द का श्रावणज्ञान के द्वारा जाना जाना सिद्ध ही है। अत: उसको सिद्ध करने के लिये प्रयुक्त शब्दत्वहेतु सिद्धसाधननामक अकिञ्चित्कर हेत्वाभास है ॥३७॥

संस्कृतार्थ—अत्रानेन शब्दत्वेन हेतुना किञ्चिदपि नो साध्यते। यत: शब्दस्य श्रावणज्ञानेन ज्ञानं सिद्धमेव विद्यते ॥३७॥

शब्दत्वहेतु के अकिञ्चित्करत्व की पुष्टि—

यथानुष्णोऽग्निर्द्रव्यत्वादित्यादौ किञ्चित्कर्तुमशक्यत्वात् ॥३८॥

अर्थ— जिस प्रकार अग्नि ठण्डी होती है, क्योंकि वह द्रव्य है, इत्यादि अनुमानों में कुछ नहीं कर सकने से द्रव्यत्वादि हेतु अकिञ्चित्कर कहे जाते हैं, उसी प्रकार ऊपर के दृष्टान्त में भी जानना चाहिये।

संस्कृतार्थ—यथा 'अनुष्णोऽग्निर्द्रव्यात्' इत्यादिष्वनुमानेषु किञ्चित्कर्तुमशक्यत्वाद् द्रव्यत्वादयो हेतवोऽकिञ्चित्करा: प्रोच्यन्ते तथैवोपर्युक्तदृष्टान्ते शब्दत्वहेतुरप्यकिञ्चित्करो विज्ञेय:।

अकिञ्चित्कर हेत्वाभास के प्रयोग की उपयोगिता—

लक्षण एवासौ दोषो व्युत्पन्नप्रयोगस्य पक्षदोषेणैव दुष्टत्वात् ॥३९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—शास्त्रीय विचार के समय में ही हेतु के अकिञ्चित्करत्व का विचार होता है, वादकाल में नहीं। क्योंकि व्युत्पन्न पुरुषों का प्रयोग पक्ष के दोषों से ही दुष्ट हो जाता है ॥ ३९ ॥

संस्कृतार्थं—अकिञ्चित्करहेत्वाभासविचारः शास्त्रे एव जायते, न तु वादे। यतो व्युत्पन्नप्रयोगः पक्षदोषेणैव दूष्यते, तत्र हेतुदोषस्य प्राधान्यं नो विद्यते ॥ ३९ ॥

अन्वयदृष्टान्ताभास के भेद—

दृष्टान्ताभासा अन्वये ऽसिद्धसाधनोभयाः ॥ ४० ॥

अर्थ—अन्वयदृष्टान्ताभास के तीन भेद हैं। साध्यविकलः, साधनविकलः, उभयविकलश्चेति त्रयो ऽन्वयदृष्टान्ताभासभेदाः विद्यन्ते। ४०।

अन्वयदृष्टान्ताभासों के उदाहरण—

अपौरुषेयः शब्दोऽमूर्तत्वादिन्द्रियसुखपरमाणुघटवत्

अर्थ— शब्द अपौरुषेय होता है अर्थात् पुरुष का किया नहीं होता, क्योंकि वह अमूर्त होता है, जैसे कि इन्द्रियसुख। यहां इन्द्रियसुख पौरुषेय दृष्टान्त है और अपौरुषेयपना साध्य है। इन्द्रियसुख दृष्टान्त साध्य अपौरुषेयपने से रहित है; क्योंकि इन्द्रियसुख पुरुषकृत ही होता है, यह साध्यविकल (असिद्धसाध्य) अन्वयदृष्टान्ताभास का उदाहरण है।

दूसरे का दृष्टान्त परमाणु है। यहां साधन अमूर्तिकपना है; किन्तु परमाणु मूर्तिक है। परमाणु दृष्टान्त में अमूर्तिकपना साधन असिद्ध है। इसलिये यह साध्यविकल (असिद्ध साधन) अन्वयदृष्टान्ताभास है ॥ ४१ ॥

तीसरे का दृष्टान्त घट है। यहां घट पौरुषेय भी है और मूर्तिक भी है। यह साध्य अपौरुषेय और साधन अमूर्तिकपना दोनों से रहित है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसलिये उभयविकल (असिद्धसाध्यसाधन) अन्वयदृष्टान्ताभास है ।। ४१ ।।

संस्कृतार्थ—असिद्धसाध्यस्यान्वयदृष्टान्ताभासस्योदाहरणम्—शब्दोऽपौरुषेयः अमूर्तत्वात्, इन्द्रियजन्यसुखवत् । अत्रेन्द्रियसुखस्य पौरुषेयत्वाद् असिद्धसाध्यत्वम् ।

अथ च—पूर्वोक्तानुमाने परमाणुः असिद्धसाधनान्वयदृष्टान्ताभासो भवति । परमाणोः अमूर्तत्वाभावादसिद्धसाधनत्वम् ।

किञ्च—पूर्वोक्तानुमाने घटोऽसिद्धोभयान्वयदृष्टान्ताभासो जायते । घटस्य अपौरुषेयत्वाभावात् अमूर्तिकत्वाभावाच्चासिद्धोभयत्वम् ।। ४१ ।।

विशेषार्थ—जो दृष्टान्त अन्वयव्याप्ति दिखा कर दिया जाता है उसको अन्वयदृष्टान्त कहते हैं । उस व्याप्ति में दो वस्तुएँ होती हैं, एक साध्य और दूसरा साधन । जिस दृष्टान्त में साध्य न होगा वह साध्य से, जिसमें साधन न होगा वह साधन से और जिसमें दोनों नहीं होंगे वह दोनों से रहित कहा जावेगा ।। ४१ ।।

अन्वयदृष्टान्ताभास का उदाहरणान्तर—

विपरीतान्वयश्च यदपौरुषेयं तदमूर्तम् ।। ४२ ।।

अर्थ—पूर्वोक्तानुमान में—जो अपौरुषेय होता है वह अमूर्त होता है, इस प्रकार उलटा अन्वय दिखाने को भी अन्वय दृष्टान्ताभास कहते हैं ।। ४२ ।।

संस्कृतार्थ—यत्र साध्यसाधनयोः वैपरीत्येन अन्वयव्याप्तिः प्रदर्श्यते सोऽयन्वयदृष्टान्ताभासो निगद्यते । तद्यथा यदपौरुषेयं तदमूर्तम्, यथा गगनम् । अत्र गगनस्यान्वयदृष्टान्ताभासत्वम्, विद्युदादेः अपौरुषेयत्वेऽपि अमूर्तत्वाभावात् ।। ४२ ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपर्युक्त सूत्र नं० ४२ के वर्णन की पुष्टि—

विद्युदादिना ऽ तिप्रसङ्गात् ॥ ४३ ॥

अर्थ—उल्टा अन्वय दिखलाने से बिजली आदिक के अतिप्रसङ्ग होता है। अर्थात् बिजली अपौरुषेय है, इसलिये अमूर्त होना चाहिये, परन्तु वह अपौरुषेय होते हुए भी मूर्तिक है ॥४३॥

संस्कृतार्थ—विपरीतान्वयव्याप्तिप्रदर्शनेन विद्युदादिनातिप्रसङ्गो भवेत्। अर्थात् विद्युत् अपौरुषेया विद्यते ऽतो ऽ मूर्ता भवितव्या। परन्तु सा अपौरुषेया सत्यपि मूर्तिका वर्तते, अतो ऽत्र विपरीतान्वयव्याप्तिप्रदर्शनम् अन्वयदृष्टान्ताभासो विज्ञेयः ॥४३॥

व्यतिरेकदृष्टान्ताभास के भेद और उदाहरण—

व्यतिरेके ऽ सिद्धतद्व्यतिरेकाः, परमाण्विन्द्रिय-सुखाकाशवत् ॥४४॥

अर्थ—व्यतिरेकदृष्टान्ताभास के तीन भेद हैं। साध्यविकल, साधनविकल और उभयविकल। जैसे शब्द अपौरुषेय होता है, क्योंकि वह अमूर्त होता है। जो पौरुषेय नहीं होता, वह अमूर्तिक भी नहीं होता, जैसे परमाणु, इन्द्रियसुख और आकाश ये तीनों व्यतिरेक दृष्टान्ताभास हैं। क्योंकि इन में क्रमशः साध्य, साधन और उभय तीनों का व्यतिरेक असिद्ध है।

यहाँ परमाणु असिद्धसाध्यव्यतिरेक है, क्योंकि वह अपौरुषेय है, इसलिये परमाणु के अपौरुषेयपना का साध्य से व्यतिरेक नहीं हुआ।

इन्द्रियसुख असिद्धसाधन व्यतिरेक है, क्योंकि वह अमूर्तिक है, इसलिये इन्द्रियसुख का अमूर्तिकपना साधन से व्यतिरेक नहीं हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आकाश असिद्धसाध्यसाधनव्यतिरेक है, क्योंकि वह अमूर्तिक भी है और पौरुषेय भी है, इसलिये आकाश का साध्य और साधन दोनों से व्यतिरेक नहीं हुआ ॥४४॥

संस्कृतार्थ—व्यतिरेकदृष्टान्ताभासोऽपि त्रिविधः। असिद्धसाध्याभावः, असिद्धसाधनाभावः, असिद्धोभयाभावश्चेति। तद्यथा-शब्दः अपौरुषेयः अमूर्तत्वात्, अत्रानुमाने परमाणुः साध्याभावविकलदृष्टान्तः, तस्यामूर्तत्वेऽपि पौरुषेयत्वाभावात्। अथ चात्रैवानुमाने इन्द्रियसुख साधनाभावविकलदृष्टान्तः, तस्य पौरुषेयत्वेऽपि मूर्तत्वाभावात्। किञ्चात्रैवानुमाने आकाशम् उभयाभावविकलदृष्टान्तः, आकाशस्य पौरुषेयत्वा भावान्मूर्तत्वाभावाच्च ॥४४॥

विशेषार्थ—जो दृष्टान्त व्यतिरेकव्याप्ति अर्थात् साध्य के अभाव में साधन का अभाव दिखा कर दिया जाता है उसे व्यतिरेकदृष्टान्त कहते हैं। उस व्यतिरेक व्याप्ति में दो वस्तुएँ होती हैं, एक साध्याभाव दूसरा साधनाभाव। फिर जिस दृष्टान्त में साध्याभाव नहीं होगा वह साध्य से, जिसमें साधनाभाव नहीं होगा वह साधन से तथा जिसमें दोनों नहीं होंगे वह उभय से रहित कहा जावेगा ॥४४॥

व्यतिरेक दृष्टान्ताभास का उदाहरणांतर–

विपरीतव्यतिरेकश्च यन्नामूर्तं तन्नापौरुषेयम् ॥४५॥

अर्थ—पूर्वोक्त अनुमान में व्यतिरेक दिखाते हुये 'जो अमूर्त नहीं होता वह अपौरुषेय भी नहीं होता' इस प्रकार उलटा व्यतिरेक दिखा देना भी व्यतिरेक दृष्टान्ताभास है। यहाँ जो अपौरुषेय नहीं होता, वह अमूर्तिक नहीं होता, ऐसा कहना था सो उल्टा कहा, इसलिये व्यतिरेकदृष्टान्ताभास हुआ ॥४५॥

संस्कृतार्थ—यत्र साधनाभावमुखेन साध्याभावः प्रदर्श्यते सोऽपि व्यतिरेकदृष्टान्ताभासो भवति। तद्यथा–यन्नामूर्तं तन्ना–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पौरुषेयम्, यथा घटः, इत्यत्र घटः व्यतिरेकदृष्टान्ताभासः, विद्युदादेः मूर्तत्वे ऽपि पौरुषेयत्वाभावात् ॥४५॥

विशेषार्थ---व्यतिरेक में सर्वत्र साध्याभाव में साधनाभाव दिखाया जाता है। इससे उल्टा दिखाने में बिजली आदि के साथ पूर्व की तरह अतिप्रसङ्ग होता है, इसलिये वह व्यतिरेक दृष्टान्ताभास है ॥४५॥

बालप्रयोगाभास का लक्षण–

बालप्रयोगाभासः पञ्चावयवेषु कियद्धीनता ॥४६॥

अर्थ---प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमन इन पांच अनुमानावयवों में से कितने ही कम अवयवों का प्रयोग करना बाल-प्रयोगाभास है। क्योंकि कम अवयवों वाले प्रयोग से बालकों को ज्ञान नहीं हो सकता, इसलिये वह प्रयोग बालकों के लिये झूठा है।

संस्कृतार्थ---पञ्चभ्यो हीनैरनुमानावयवैः बालकानां यथार्थज्ञानं नो जायते, अतएव तान्प्रति पञ्चैवावयवाः प्रयोक्तव्या भवेयुः। अतो हीनावयवप्रयोगो बालप्रयोगाभासो भवेत् ॥४६॥

बालप्रयोगाभास का उदाहरण---

अग्निमानयं प्रदेशो धूमवत्वाद्यदित्थं तदित्थं यथा महानसः।

अर्थ—यह प्रदेश अग्निवाला है, क्योंकि धूम वाला है। जो धूम वाला होता है वह अग्नि वाला होता है, जैसे रसोई घर। इस प्रयोग में प्रतिज्ञा, हेतु और उदाहरण ये तीन ही अवयव कहे गये हैं, इसलिये बालप्रयोगाभास है ॥४७॥

द्वितीय बालप्रयोगाभास---

धूमवांश्चायम् ॥४८॥

अर्थ---पूर्वोक्त तीन अवयवों के साथ इतना और कहना कि यह भी धूमवाला है। यहां यद्यपि उपनय सहित चार अवयव कहे गये हैं, तो भी पूरे पांच अवयव न होने से यह बालप्रयोगाभास है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृतार्थ—अग्निमानयं प्रदेशो, धूमवत्वात्, यदित्थं तदित्थं, यथा महानसः, धूमवांश्चायम् । अत्रानुमानप्रयोगे प्रतिज्ञाहेतूदाहरणोपनयानां चतुर्णामवयवानामेव प्रयोगो विहितो; निगमनं तु परित्यक्तम् । अतोऽयम्प्रयोगो बालप्रयोगाभासो विज्ञेयः ।।४८।।

उलटे प्रयोग के बालप्रयोगाभासत्व—

तस्मादग्निमान् धूमवान् चायम् ।।४९।।

अर्थ—धूमवाला होने से अग्निवाला है और यह भी धूमवाला है। यहां दृष्टान्त के बाद उपनय बोलना चाहिये कि उसी तरह यह भी धूमवाला है। फिर निगमन बोलना चाहिये कि 'इसी से यह अवश्य ही अग्नि वाला है, परन्तु इस सूत्र में उपनय और निगमन विपरीतता से कहे गये हैं, इसलिये यह बालप्रयोगाभास है ।।४९।।

संस्कृतार्थ—दृष्टान्तानन्तरम् उपनयः प्रयोक्तव्यः, यत्तथा चायं धूमवान् । ततश्च निगमनं प्रयोक्तव्यम्, यत्तस्मादग्निमान् । किन्त्वत्र सूत्रे उपनयनिगमने वैपरीत्येन प्रयुक्ते, अतोऽयम्प्रयोगो बालप्रयोगाभासो विज्ञेयः ।।४९।।

उल्टे प्रयोग के बालप्रयोगाभासत्व में हेतु—

स्पष्टतया प्रकृतप्रतिपत्तेरयोगात् ।।५०।।

अर्थ—अनुमानवयवों का क्रमहीन प्रयोग करने पर प्रकृत अर्थ का स्पष्टता से ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता, इसलिये वह बाल प्रयोगाभास है ।।५०।।

संस्कृतार्थ—अनुमानावयवानां क्रमहीनप्रयोगे प्रकृतार्थस्य स्पष्टतया ज्ञानं नो जायते । अतः सः बालप्रयोगाभासः प्रोच्यते ।।५०।।

आगमाभासस्य लक्षणम् आगमाभास का लक्षण—

रागद्वेषमोहाक्रान्तपुरुषवचनाज्जातमागमाभासम् ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—रागी, द्वेषी और अज्ञानी मनुष्य के वचनों से उत्पन्न हुये आगम को आगमाभास कहते हैं।

संस्कृतार्थ—रागिणो, द्वेषिणोऽज्ञानिनो वा मानवस्य वचनेभ्यः समुत्पन्नः आगमः आगमाभासो विज्ञेयः ॥५१॥

आगमाभास का उदाहरण—

यथा नद्यास्तीरे मोदकराशयः सन्ति धावध्वं माणवका।

अर्थ—जैसे कि–"हे बालको ! दौड़ो, नदी के किनारे लड्डुओं के ढेर लगे हैं' यह वचन रागोक्त होने से आगमाभास है।

संस्कृतार्थ—नद्यास्तीरे मोदकराशयः सन्ति, धावध्वं माणवकाः इति वचनमागमाभासो विद्यते रागेणोक्तत्वात् ॥५२॥

विशेषार्थ—किसी व्यक्ति को बालक व्याकुल कर रहे थे, उसने अपना पिण्ड छुड़ाने के लिये बहकावने का वचन बोला कि 'नदी के किनारे लड्डुओं के ढेर लगे हैं, हे बालको ! तुम जाओ और उठाओ, ऐसा कह कर उनको नदी के किनारे चला दिया। इस प्रकार अपने स्वार्थसाधन को यह वचन कहा गया, इसलिये यह आगमाभास है।

आगमाभास का उदाहरणान्तर–

अंगुल्यग्रे हस्तियूथशतमास्ते इति च ॥५३॥

अर्थ–अंगुलि के अग्रभाग पर हाथियों के सौ समुदाय रहते हैं। यहाँ अपने आगम की वासना में लीन सांख्यमती प्रत्यक्ष और अनुमान से विरुद्ध 'सभी वस्तुएँ सभी जगह हैं' "ऐसा मानता हुआ पूर्वोक्त वचन कहता है, यह अनाप्त का वचन होने से आगमाभास है।

संस्कृतार्थ–'अंगुल्यग्रे हस्तियूथशतमास्ते' इति वचनमागमाभासो विद्यते, प्रत्यक्षेण बाधितत्वाद् असम्भवत्वाद्वा ॥५३॥

पूर्वोक्त दोनों उदाहरणों के आगमाभास होने में हेतु–

विसम्वादात् ॥[illegible]॥ 54 ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—विवादग्रस्त होने के कारण पूर्वोक्त वचन आगमाभास है। क्योंकि आगम प्रमाण का अङ्ग है और प्रमाण अविसम्वादी होना आवश्यक है।

संस्कृतार्थ—आगमः प्रमाणाङ्गं विद्यते। प्रमाणेन चाविसम्वादिना भाव्यम्। अतो विसम्वादग्रस्तत्वात्पूर्वोक्तवचनमागमाभासो विद्यते ॥५४॥

प्रमाणसंख्याभास का वर्णन—

प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणमित्यादि संख्याभासम् ॥५५॥

अर्थ—प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है इत्यादि ५७वें सूत्र में कथित सर्व ही संख्याभास हैं।

संस्कृतार्थ—प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणमित्यादि संख्याभासम्।

प्रत्यक्षमात्रप्रमाण के संख्याभासत्व का स्पष्टीकरण—

लौकायतिकस्य प्रत्यक्षतः परलोकादिनिषेधस्य परबुद्ध्यादेश्चासिद्धेरतद्विषयत्वात् ॥५६॥

अर्थ—चार्वाकमती का प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण मानना इसलिये संख्याभास है कि अनुमानादि प्रमाण बिना केवल प्रत्यक्ष से परलोक आदि का निषेध और पर की बुद्धि आदि की सिद्धि नहीं हो सकती, क्योंकि वे प्रत्यक्ष के विषय नहीं हैं। और ऐसा नियम है कि जो जिसको विषय नहीं करता, वह उसका निषेध तथा विधान भी नहीं कर सकता।

संस्कृतार्थ—चार्वाकस्य प्रत्यक्षमात्रप्रमाणस्य स्वीकरणमतः संख्याभासो विद्यते, यदनुमानादिप्रमाणं विना प्रत्यक्षमात्रेण परलोकादिनिषेधस्य परबुद्ध्यादेश्च सिद्धिर्नो भवेत्, यतस्तौ प्रत्यक्षविषयौ न स्तः। अथ चायं नियमो यत्—'यद्यत् न विषयीकरोति तत्तस्य विधिं, निषेधम्वा कर्तुं नो शक्नुयात् ॥५६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रत्यक्षमात्र के संख्याभासत्व का दृढ़ीकरण—

सौगतसांख्ययौगप्राभाकरजैमिनीयानां प्रत्यक्षानुमानागमोपमानार्थापत्त्याभावैरेकैकाधिकैः व्याप्तिवत्।

अर्थ— जिस प्रकार प्रत्यक्ष और अनुमान आदि को लेकर एक एक अधिक प्रमाण से बौद्ध, सांख्य, यौग, प्राभाकार और जैमिनीय व्याप्ति (अविनाभाव) का निर्णय नहीं कर सकते, उसी प्रकार चार्वाक भी एक प्रत्यक्षप्रमाण से ही परलोक आदि का निषेध तथा पर की बुद्धि आदिक की सिद्धि नहीं कर सकता।

संस्कृतार्थ—यथा सौगतसांख्ययोगप्राभाकरजैमिनीयाङ्गीकृतैरेकैकाधिकैः प्रत्यक्षानुमानागमोपमानार्थापत्त्याभावैः व्याप्तेरनिर्णयोऽतस्तानि संख्याभासास्तथा चार्वाकोऽपि प्रत्यक्षमात्रेण परलोकादिनिषेधस्य परबुद्ध्यादेश्च सिद्धिं कर्तुं नो शक्नुयात्। अतस्तत्स्वीकृतम् प्रत्यक्षमेवैकम्प्रमाणं संख्याभासः।

प्रमाणान्तर से परबुद्ध्यादिक की सिद्धि मानने से आपत्ति—

अनुमानादेस्तद्विषयत्वे प्रमाणान्तरत्वम्॥५८॥

अर्थ—यदि अनुमान आदिक से परलोक आदि का निषेध तथा पर की बुद्धि आदि की सिद्धि करोगे तो अनुमान आदि दूसरा प्रमाण मानना पड़ेगा। तब तो प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण मानना संख्याभास है, यह बिलकुल स्पष्ट हो जावेगा।

संस्कृतार्थ—अनुमानेन परलोकादिनिषेधस्य परबुद्ध्यादिसिद्धे र्वा स्वीकारेऽनुमानं द्वितीयम्प्रमाणम्माननीयम्भवेत्। तदा प्रत्यक्षमात्रस्य प्रमाणस्याङ्गीकरणं संख्याभासः सुस्पष्टो भवेत्॥५८॥

तर्क को अप्रमाण मानकर संख्याभासत्व के निराकरण से हानि—

तर्कस्येव व्याप्तिगोचरत्वे प्रमाणान्तरत्वमप्रमाणस्याव्यवस्थापकत्वात्॥ ५९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ––प्रत्यक्षप्रमाण से व्याप्ति का निर्णय नहीं होसकता, इसलिये जैसे व्याप्ति का निर्णय करने के लिये सौगतादिक को तर्क नाम का एक भिन्न ही प्रमाण मानना पड़ता है, उसी प्रकार परलोकादि का निषेध तथा पर की बुद्धि की सिद्धि आदि के लिये प्रमाणान्तर मानना पड़ेगा। तब एक ही प्रमाण मानना संख्याभास होगा ही।

यदि कोई कहे कि तर्क को मान कर भी हम उसे प्रमाण नहीं मानेंगे, अप्रमाण मान लेवेंगे, तब तो दूसरा प्रमाण नहीं मानना पड़ेगा, इसलिये दृष्टान्त विषम है।

इसका उत्तर यह है कि जो स्वयं अप्रमाण होता है वह पदार्थों का ठीक ठीक निर्णय नहीं कर सकता, इसलिये तर्क को अप्रमाण नहीं माना जा सकता।

संस्कृतार्थ––किञ्चानुमानादेः परबुद्ध्यादिनिश्चायकत्वाभ्युपगमेऽपि चार्वाकाणाम्प्रत्यक्षैकप्रमाणवादो हीयते। यथा सौगतादीनां तर्कप्रमाणेन व्याप्तिनिश्चयाभ्युपगमे स्वाभिमतद्वित्रिचतुरादिसंख्याव्याघातो भवति। किंच तर्कस्याप्रमाणत्वाभ्युपगमे व्याप्तिप्रतिपत्तिः खपुष्पवद् भवेत्। अप्रमाणस्य समारोपाव्यवच्छेदेन स्वविषयनिश्चायकत्वाभावात् ॥५९॥

पूर्वोक्त कथन की पुष्टि––

प्रतिभासस्य च भेदकत्वात् ॥६०॥

अर्थ––प्रतिभासभेद ही प्रमाण के भेदों को सिद्ध करता है अर्थात् जिसने जितने प्रमाण माने हैं उनसे अधिक प्रमाणों की सिद्धि के लिये एक विलक्षण प्रतिभास ही साक्षी है।

जिन्होंने २, ३, ४, ५, ६ जितने भी प्रमाण माने हैं, उन सब के लिये व्याप्ति को विषय करने वाला तर्कप्रमाण, प्रतिभासभेद (विलक्षण प्रतिभास) होने से मानना ही पड़ेगा, क्योंकि प्रतिभासभेद से ही प्रमाणों का भेद माना जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृतार्थ—किञ्च वस्तुस्वरूपप्रतिभासभेदः एव प्रमाणभेदान् व्यवस्थापयति। यथा स्पष्टप्रतिभासः प्रत्यक्षम्, अस्पष्टप्रतिभासश्च परोक्षं कथ्यते, तथा व्याप्तिरूपः प्रतिभासस्तर्को निगद्यते। एवञ्च तर्क-प्रमाणेऽङ्गीकृते चार्वाकादीनामङ्गीकृतप्रमाणसंख्याव्याघातो ऽनिवार्यो भवेत्। अतस्तत्स्वीकृतप्रमाणसंख्यायाः प्रमाणसंख्याभासत्वमनिवार्यं जायेत ॥६०॥

प्रमाणविषयाभास का स्वरूप—

विषयाभासः सामान्यं विशेषो द्वयं वा स्वतन्त्रम्।

अर्थ—केवल सामान्य (पर्याय) को ही, केवल विशेष (द्रव्य) को ही अथवा दोनों रूप पदार्थ को ही स्वतन्त्रता से एक-एक को प्रमाण का विषय मानना विषयाभास है।

संस्कृतार्थ—सामान्यमात्रस्य, विशेषमात्रस्य, स्वतन्त्रस्य स्वतन्त्रस्य द्वयस्य वा प्रमाणविषयत्वेनाङ्गीकरणं प्रमाणविषयाभासः प्रोच्यते ॥६१॥

विशेषार्थ—सांख्य पर्यायरहित केवल द्रव्य (सामान्य) को ही, बौद्ध द्रव्यांशरहित केवल पर्याय (विशेष) को ही तथा नैयायिक वा वैशेषिक सामान्य और विशेष स्वरूप पदार्थ को मानकर भी, सामान्य तथा विशेष को दूसरे की सहायता रहित स्वतन्त्रता से प्रमाण का विषय मानते हैं इसलिये वे सब विषयाभास हैं, क्योंकि प्रमाण का विषय परस्पर सापेक्ष उभयात्मक है।

केवल सामान्यादिक के विषयाभासत्व में हेतु—

तथाप्रतिभासनात् कार्याकरणाच्च ॥६२॥

अर्थ—सामान्य-विशेष रूप ही पदार्थ का प्रतिभास होता है। तथा वैसा ही पदार्थ अपने कार्य (अर्थक्रिया) करने में समर्थ होता है। अन्य सामान्य रूप अथवा विशेष रूप पदार्थ नहीं, इसलिये वे विषया-भास कहे जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संस्कृतार्थ—सांख्याभिमतं सामान्यतत्त्वं, सौगताभिमतं विशेषतत्त्वं, यौगाभिमतं परस्परनिरपेक्षसामान्यविशेषरूपतत्त्वञ्च विषयाभासो भवति, तथा प्रतिभासनाभावात्, अर्थक्रिया कारित्वाभावाच्च ॥६२॥

स्वयं समर्थ पदार्थ के निरपेक्ष कार्यकारित्व मानने से हानि—

समर्थस्य करणे सर्वदोत्पत्तिरनपेक्षत्वात् ॥६३॥

अर्थ—यदि वह पदार्थ समर्थ होता हुआ कार्य करता है तो निरन्तर ही कार्य की उत्पत्ति होना चाहिये, क्योंकि वह अपने कार्य में किसी की मदद नहीं चाहता है जिससे उसको निरन्तर कार्य करना चाहिये।

संस्कृतार्थ—किञ्च तदेकान्तात्मकं तत्त्वं स्वयं समर्थमसमर्थं वा कार्यकारि स्यात्? तत्र समर्थत्वे किं निरपेक्षं कार्यं कुर्यात्सापेक्षम्वा? न तावत्प्रथमः पक्षः। निरपेक्षस्य समर्थतत्त्वस्य कार्यजनकत्वे सर्वदा कार्योत्पत्तिप्रसङ्गस्य दुर्निवारत्वात् ॥६३॥

स्वयंसमर्थ पदार्थ के सहकारिसाहाय्य से कार्यकारित्व मानने से हानि—

परापेक्षणे परिणामित्वमन्यथा तदभावात् ॥६४॥

अर्थ—यदि सामान्यादि परपदार्थ की अपेक्षा करें, तो उन्हें परिणामी मानना पड़ेगा। क्योंकि वे पहले कार्य नहीं करते थे, जब सहकारी मिला तब कार्य किया। इससे वे पहिले स्वयं असमर्थ थे, सहकारी के निमित्त से नवीन सामर्थ्य पाया। परिणामीपने के विना यह हो नहीं सकता कि एकाकी तो कार्य नहीं करे और मिल कर कार्य करें।

संस्कृतार्थ—नापि द्वितीयः पक्षः। सापेक्षसमर्थतत्त्वस्य कार्यजनकत्वाभ्युपगमे परिणामित्वप्रसङ्गात्, सामान्यविशेषात्मकत्वसिद्धेः, एकतत्त्वस्य परिणामित्वाभावे कार्यजनकत्वायोगात्।

स्वयं असमर्थ पदार्थ के कार्यकारित्व मानने से हानि—

स्वयमसमर्थस्याकारकत्वात् पूर्ववत् ॥६५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ— जो स्वयं असमर्थ है वह भी सहकारी मिलने पर भी किसी कार्य को नहीं कर सकता। जैसे पहले सहकारी विना कार्य करने वाला नहीं था वैसे सहकारी मिलने पर भी नहीं।

संस्कृतार्थ—स्वयमसमर्थेन तत्त्वेन कार्योत्पत्तिस्तु बन्ध्यासुतवत् असम्भवैव। तस्मान्यविशेषात्मकपदार्थ एव प्रमाणगोचरो भवति, शेषश्च विषयाभास इति ॥ ६५ ॥

प्रमाणफलाभास का वर्णन—

फलाभासः प्रमाणादभिन्नं भिन्नमेव वा ॥६६॥

अर्थ—प्रमाण से उसके फल को सर्वथा भिन्न ही या सर्वथा अभिन्न ही मानना प्रमाणभास है।

संस्कृतार्थ—प्रमाणात्सर्वथा अभिन्नमथवा सर्वथा भिन्नं फलम् फलाभासः कथ्यते ॥ ६६ ॥

फल को प्रमाण से सर्वथा अभिन्न मानने से हानि—

अभेदे तद्व्यवहारानुपपत्तेः॥६७॥

अर्थ— यदि प्रमाण से फल सर्वथा अभिन्न ही माना जायगा तो यह प्रमाण है तथा यह फल है, इस प्रकार भिन्नत्व का व्यवहार नहीं बनेगा। या तो प्रमाण ही ठहरेगा या फल ही ठहरेगा, क्योंकि जुदे-जुदे दो पदार्थ तो हैं ही नहीं ॥ ६७ ॥

संस्कृतार्थ—ननु प्रमाणात्सर्वथा अभिन्नस्य फलस्य कथं फलाभासता इति न शकंनीयं, फलस्य सर्वथा अभिन्नत्वाभ्युपगमे इदम्प्रमाणम्, इदञ्चास्य प्रमाणस्य फलम् इति व्यवहारस्यानुत्पत्तेः ॥ ६७ ॥

कल्पना से प्रमाण और फलका व्यवहार करने में आपत्ति—

व्यावृत्त्यापि न तत्कल्पना फलान्तराद् व्यावृत्याऽफलत्व-प्रसंगात् ॥ ६७ ॥

अर्थ—अफल की व्यावृत्ति से फल की कल्पना नहीं हो सकती

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्योंकि जिस प्रकार अफल की व्यावृत्ति से फल की कल्पना होगी, उसी प्रकार दूसरे समान जातिवाले फल की व्यावृत्ति से अफल की कल्पना क्यों न हो जावेगी ? इसलिये कल्पनामात्र से फल का व्यवहार नहीं हो सकता।

संस्कृतार्थ—फलाभावस्य व्यावृत्त्यापि फलस्य कल्पना नो सम्भवेत् फलाभावव्यावृत्त्या फलकल्पनेव सजातीयफलव्यावृत्त्या ऽफलकल्पनायाः प्रसङ्गात् ॥ ६८ ॥

कल्पनामात्र से फलव्यवहार न हो सकने में दृष्टान्त—

प्रमाणान्तराद् व्यावृत्त्यावाप्रमाणत्वमस्य । ६९ ।

अर्थ—जिस प्रकार प्रमाणान्तर की व्यावृत्ति से अप्रमाणत्व का प्रसंग बौद्धों ने माना है, उसी प्रकार फलान्तर की व्यावृत्ति से अफलत्व का प्रसंग आ जावेगा।

संस्कृतार्थ—यथा प्रमाणान्तरव्यावृत्त्या अप्रमाणत्वस्य प्रसंगः बौद्धैरङ्गीकृतस्तथैव फलान्तरव्यावृत्त्या अफलत्वस्य प्रसङ्गः आगच्छेत् ॥ ६९ ।

प्रमाण और उसके फल में भेद का निर्णय—

तस्माद्वास्तवो भेदः । ७० ।

अर्थ—इसलिये प्रमाण और फल में भेद यथार्थ है, एकान्तरूप से अभेद ही नहीं ॥ ७० ॥

संस्कृतार्थ—अतः प्रमाणे तत्फले वा भेदो वास्तवो विद्यते, एकान्तरूपेणाभेदो नो वर्तते ॥ ७० ॥

प्रमाण वा फल में सर्वथा भेद मानने से हानि—

भेदे त्वात्मान्तरवत्तदनुपपत्तेः ॥ ७१ ॥

अर्थ—प्रमाण से फल को सर्वथा भिन्न मानने में यह दोष आता है कि जिस तरह दूसरे आत्मा के प्रमाण का फल,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैसे ही हमारे आत्मा के प्रमाण का फल, दोनों सदृश हो जावेंगे। फिर वह फल हमारे प्रमाण का है और दूसरे के आत्मा के प्रमाण का नहीं, यह कैसे निश्चित होगा? तात्पर्य यह है कि जैसे दूसरे आत्मा के प्रमाण का फल हमारे आत्मा के प्रमाण का फल नहीं कहलाता उसी प्रकार सर्वथा भिन्न होने से हमारे आत्मा के प्रमाण का फल भी हमारा नहीं कहलावेगा ॥ ७१ ॥

संस्कृतार्थं—प्रमाणात्फलस्य सर्वथा भिन्नत्वाङ्गीकारे ऽयं दोषः समायाति यद्यथा अन्यात्मप्रमाणफलं तथैव निजात्मप्रमाणफलम्, उभे एव सदृशे भवेताम्। पुनश्च तत्फलं मदीयप्रमाणस्य विद्यते नान्यदीयप्रमाणस्येति कथं निश्चीयेत। निष्कर्षश्चायं यद्यथान्यात्मप्रमाणफलमस्मदीयात्मप्रमाणफलं नो भवेत्तथा सर्वथा भेदे मदीयात्मप्रमाणफलमपि मदीयं नो व्यावर्ण्येत ॥ ७१ ॥

समवायसम्बन्ध से प्रमाण और प्रमाणफल का
निर्णय मानने का निषेध—

समवाये ऽतिप्रसंगः ॥ ७२ ॥

यौगों (बौद्धों) के यहाँ समवाय नित्य और व्यापक पदार्थ माना गया है, उससे यह निर्णय कैसे होगा कि इसी आत्मा में यह प्रमाण अथवा फल समवायसम्बन्ध से रहता है, दूसरे आत्मा में नहीं ॥ ७२ ॥

संस्कृतार्थं—नैयायिकानां कथनं विद्यते यद् यत्रात्मनि प्रमाणं समवायसम्बन्धेनावतिष्ठेत्त तत्रैव फलमपि समवायसम्बन्धेनावतिष्ठेत। तदास्य प्रमाणस्येदं फलमिति व्यवस्था समवायसम्बन्धेन भवेत्। अत्र सूत्रे तेषामस्या एवाशंकाया निषेधो विहितः यद् युष्माभिः बौद्धैः समवायो नित्यो व्यापकश्च मतः। तेनायं निर्णयः कथं भवेत्, यदत्रैवात्मनि एतत्फलं समवायसम्बन्धेनावतिष्ठते नान्यत्र ॥ ७२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वपरपक्ष के साधन और दूषण की व्यवस्था—

प्रमाणतदाभासौ दुष्टतयोद्भावितौ परिहृतापरिहृत-दोषौ वादिनः साधनतदाभासौ प्रतिवादिनो दूषणभूषणे च ।

अर्थ—वादी ने प्रमाण बोला, प्रतिवादी ने उसमें दोष दिया । फिर वादी ने उस दोष का परिहार किया, तो वादी के लिये वह साधन हो जावेगा तथा प्रतिवादी के लिये दूषण हो जायगा ।

और वादी ने प्रमाणाभास कहा तथा प्रतिवादी ने उसे प्रमाणाभास साबित किया; फिर वादी ने उसका परिहार नहीं कर पाया; तो वादी के लिये वह साधनाभास हो जावेगा और प्रतिवादी के भूषण हो जावेगा।

विशेषार्थ—अपने पक्ष में आये हुए दूषणों का परिहार करके अपने पक्ष को सिद्ध कर देने वाले की ही विजय होती है और दूसरे का पराजय । अपने पक्ष को सिद्ध कर लेना और परपक्ष में दूषण दे देना, यही प्रमाण और प्रमाणाभास जानने का फल है ।। ७३ ।।

नयादि तत्त्वों के स्वरूप के निर्णय का उपाय—

सम्भवदन्यद्विचारणीयम् ।। ७४ ।।

अर्थ—प्रमाण से भिन्न नयादि तत्त्वों का स्वरूप दूसरे शास्त्रों से जानना चाहिये । अत्र शास्त्रे (ग्रन्थे) केवलं प्रमाणविवेचनं विहितम् । एतद्भिन्नं नयादितत्त्वविवेचनं ग्रन्थान्तराद्विलोकनीयम्।। ७४ ।।

परीक्षामुख-मादर्शं, हेयोपदेय-तत्त्वयोः ।
संविदे मादृशो बालः, परीक्षादक्षवद्व्यधाम् ।।

भावार्थ—जिस प्रकार परीक्षा करने में कुशल व्यक्ति अपने प्रारब्ध कार्य को पूरा करके ही छोड़ते हैं, उसी तरह अपने सदृश मन्दबुद्धि वाले बालकों के हेय और उपादेय तत्त्वों का ज्ञान कराने के लिये दर्पण के समान इस परीक्षामुख ग्रन्थ को मुझ अल्पज्ञ ने पूर्ण किया ।

समाप्तो ऽयं ग्रन्थः ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रत्यक्षलक्षण निर्णयः, सन्निकर्षखण्डनञ्च–

ननु विशदप्रतिभासात्मकं ज्ञानम्प्रत्यक्षमिति जैनाभिमतप्रत्यक्ष-लक्षणं न युक्तियुक्तम्, संनिकर्षस्य हि तल्लक्षणत्वात्। तथा हि–'इन्द्रि-यार्थयोः सम्बन्धः सन्निकर्षः, तस्यैव प्रत्यक्षलक्षणत्वमुचितम्, नान्यस्य विशदत्वादेः' इति नैयायिकाः कथयन्ति, तन्न समीचीनम्। यतः सन्निक-र्षस्याव्यापकत्वं विद्यते, तदभावेऽपि चक्षुषा रूपादिज्ञानोत्पत्तेः कथं प्रत्यक्षलणत्वमुक्तं सन्निकर्षस्य। यथा हि–स्पर्शादीनां चतुर्णामपीन्द्रियाणां विषयं सम्बध्य तद्विषयिकज्ञानजनकत्वं न तथा चक्षुषः, अप्राप्यकारित्वा-त्तस्येति स्पष्टमेवाव्यापकत्वं सन्निकर्षस्य।

ननु यदि चक्षुषः प्राप्यकरित्वं प्रत्यक्षतो ऽ प्रसिद्धं तदानुमानात् तत्सिद्धिं करिष्यामो वयम् परमाणुवत्। यथा खलु सूक्ष्मत्वात् परमाणोः न प्रत्यक्षतः उपलब्धिस्तथापि परमाणुरस्ति स्कन्धादिकार्यान्यथानुपपत्तेः इत्यनुमानेन तत्सिद्धिः विधीयते, तथैव 'चक्षुः प्राप्तार्थप्रकाशकं बहिरिन्द्रि-यत्वात् त्वगिन्द्रियवत्, इत्यनुमानात् चक्षुषः, प्राप्तार्थप्रकाशकत्वसिद्धिः भवत्येव, प्राप्तिरेव हि सन्निकर्षः, ततो न सन्निकर्षस्याव्याप्तिरित्यपि न समीचीनम्, अस्यानुमानस्यानुमानाभासत्वात्।

तथाहि अस्मिन्ननुमाने चक्षुषः पक्षत्वं वर्तते, तत्किं लौकिकस्योता-लौकिकस्य ? लौकिकस्य चेद् बहिरिन्द्रियत्वादित्यस्य हेतोः कालात्याप-दिष्टत्वम्। तथाहि चक्षुषः प्राप्तार्थप्रकाशकत्वं खलु प्रत्यक्षेणैव बाध्यते। यतः चक्षुः विषयमप्राप्यैव तद्विषये विज्ञानं जनयति। तस्मिन् प्रत्यक्षबाधिते पक्षे सति अस्य हेतोः प्रयुक्तत्वात् कालात्यापदिष्टत्वम्। यतः बाधित-विषयः कालात्यापदिष्टः इत्युक्तत्वात्।

अलौकिकं चक्षुरिति द्वितीयपक्षस्वीकारे हेतोराश्रयासिद्धः। यतः अलौकिकस्य चक्षुषो ऽ खाप्यसिद्धेः, एवम् अनुमानेनापि चक्षुषः प्राप्यका-रित्वं साधयितुं नो युक्तम्।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किञ्च—चक्षुः अप्राप्तार्थप्रकाशकं शाखासुधादीधितिसमानकाल-प्रतीतिग्रहणाद्यन्यथानुपपत्तेः, इति प्राप्यकारित्वं स्यात्तर्हि पूर्वं शाखायाः पश्चात्तु सुधादीधितेः, नोभयोः युगपत्प्रतीतिः इति सन्निकर्षस्याव्यापकत्वाच्च प्रत्यक्षलक्षणत्वमुचितम । किन्तु विशदप्रतिभासात्मकत्वस्यैव प्रत्यक्षत्वं घटते ।

नयविषयिको निबन्धः

प्रमाणगृहीतार्थैकदेशग्राही प्रमातुरभिप्रायविशेषो नयः । तदुक्तम—'सकलादेशः प्रमाणाधीनो विकलादेशो नयाधीनः' इति । स नयः संक्षेपेण द्वेधा, द्रव्यार्थिकः, पर्यायार्थिकश्चेति । द्रव्यमर्थः प्रयोजनमस्येति द्रव्यार्थिकः । पर्यायः अर्थः प्रयोजनमस्येति पर्यायार्थिकः ।

तत्र द्रव्यार्थिको नयो द्रव्यपर्यायरूमेकानेकात्मकम् अनेकान्तं प्रमाणप्रतिपन्नमर्थं विभज्य पर्यायार्थिकनयविषयभेदस्योपसर्जनभावेनावस्थामात्रमभ्युमजानन् स्वविषयं द्रव्यभेदमेव व्यहारयति । 'नयान्तरविषयसापेक्षाः सन्नयाः' इत्यभिधानात् ।

तत्र द्रव्यार्थिको नयः त्रिविधः—नैगमसंग्रहव्यवहारभेदात् । अन्योन्यगुणप्रधानभूतभेदाभेदप्ररूपणो नैगमः । प्रतिपक्षव्यपेक्षः सन्मात्रग्राही संग्रहः । संग्रहगृहीतार्थभेदको व्यवहारः ।

पर्यायार्थिकनयस्तु चतुर्विधः— ऋजुसूत्रश..समभिरूढैवम्भूतभेदात् । शुद्धपर्यायग्राही प्रतिपक्षसापेक्षः ऋजुसूत्रः । कालकारकलिंगादीनाम्भेदात् स्वस्य कथञ्चिदर्थभेदकथनं शब्दनयः । पर्यायभेदात् पदार्थनानात्वनिरूपकः समभिरूढः । क्रियाश्रयेण भेदप्ररूपकः एवम्भूतः । एते नयाः सापेक्षा एवार्थक्रियां कुर्वते ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असाधारणधर्मवचन के लक्षणत्व का निर्णय

'असाधारणधर्म के कथन करने को लक्षण कहते हैं' ऐसा किन्हीं (नैयायिक और हेमचन्द्राचार्य) का कहना है; पर वह ठीक नहीं है। क्योंकि लक्ष्यरूप धर्मिवचन का लक्षणरूप धर्मवचन के साथ सामानाधिकरण्य (शाब्दसामानाधिकरण्य) के अभाव का प्रसंग आता है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

यदि असाधारणधर्म को लक्षण का स्वरूप माना जाय तो लक्ष्य-वचन और लक्षणवचन में सामानाधिकरण्य नहीं बन सकता। यह नियम है कि लक्ष्य-लक्षणभावस्थलमें लक्ष्यवचन और लक्षणवचनमें एकार्थ-प्रतिपादकत्वरूप सामानाधिकरण्य अवश्य होता है।

जैसे 'ज्ञानी जीवः' अथवा 'सम्यग्ज्ञानं प्रमाणम्' इनमें शाब्द समानाधिकरण्य है। यहाँ 'जीवः' लक्ष्यवचन है; क्योंकि जीव का लक्षण किया जा रहा है। और 'ज्ञानी' लक्षणवचन है; क्योंकि वह जीव को अन्य अजीवादि पदार्थों से व्यावृत्त करता है। 'ज्ञानवान् जीव है' इसमें किसी को विवाद नहीं है।

अब यहाँ देखेंगे कि 'जीव' शब्द का जो अर्थ है वही 'ज्ञानी' शब्द का अर्थ है। और जो 'ज्ञानी' शब्द का अर्थ है वही 'जीव' शब्द का है। अतः दोनों का वाच्यार्थ एक है। जिन दो शब्दों-पदों का वाच्यार्थ एक होता है उसमें शाब्दसामानाधिकरण्य होता है। जैसे 'नीलं कमलम्' यहाँ स्पष्ट है। इस तरह 'ज्ञानी' लक्षणवचन में और 'जीव' लक्ष्यवचन में एकार्थप्रतिपादकत्वरूप शाब्दसामानाधिकरण्य सिद्ध है। इसी प्रकार 'सम्यग्ज्ञानं प्रमाणम्' यहाँ भी जानना चाहिये।

इस प्रकार जहाँ कहीं भी निर्दोष लक्ष्यलक्षणभाव किया जावेगा वहां सब जगह शाब्दसामानाधिकरण्य पाया जायेगा। इस नियम के अनुसार 'असाधारणधर्मवचनं लक्षणम्' यहाँ असाधारणधर्म जब लक्षण होगा तो लक्ष्य धर्मी होगा और लक्षणवचन धर्मवचन तथा लक्ष्यवचन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धर्मिवचन माना जायेगा। किन्तु लक्ष्यरूप धर्मिवचन का प्रतिपाद्य अर्थ एक नहीं है। धर्मवचन का प्रतिपाद्य अर्थ तो धर्म है और धर्मिवचन का का प्रतिपाद्य अर्थ धर्मी है। ऐसी हालत में दोनों का प्रतिपाद्य अर्थ भिन्न भिन्न होने से धर्मिरूप लक्ष्यवचन और धर्मरूपलक्षणवचन में एकार्थप्रतिपादकत्वरूप सामानाधिकरण्य सम्भव नहीं है और इसलिये उक्तप्रकार का लक्षण करने में शाब्दसामानाधिकरण्याभावप्रयुक्त असम्भव दोष आता है।

अव्याप्ति दोष भी इस लक्षण में आता है। दण्डादि असाधारणधर्म नहीं है फिर भी वे पुरुष के लक्षण होते हैं। अग्नि की उष्णता, जीव का ज्ञान आदि जैसे अपने लक्ष्य में मिले हुये होते हैं इसलिये वे उनके असाधारणधर्म कहे जाते हैं। वैसे दण्डादि पुरुष में मिले हुये नहीं हैं—उससे पृथक् हैं और इसलिये वे पुरुष के असाधारण धर्म नहीं हैं। इस प्रकार लक्षणरूप लक्ष्य के एकदेश अनात्मभूत दण्डादि लक्षण में असाधारणधर्म के न रहने से लक्षण (असाधारणधर्म) अव्याप्त है।

इतना ही नहीं, इस लक्षण में अतिव्याप्ति दोष भी आता है। शाबलेयत्वादिरूप असाधारण धर्म अव्याप्त नाम का लक्षणाभास भी है। इसका खुलासा निम्नप्रकार है—

मिथ्या अर्थात्—सदोष लक्षण को लक्षणाभास कहते हैं। उसके तीन भेद हैं—(१) अव्याप्त, (२) अतिव्याप्त और (३) असम्भवि। लक्ष्य के एकदेश में लक्षण के रहने को अव्याप्त लक्षणाभास कहते हैं। जैसे गाय का शाबलेयत्व। शाबलेयत्व सब गायों में नहीं पाया जाता, वह कुछ ही गायों का धर्म है, इसलिये अव्याप्त है। लक्ष्य और अलक्ष्य में लक्षण के रहने को अतिव्याप्त लक्षणाभास कहते हैं। जैसे गाय का ही पशुत्व (पशुपना) लक्षण करना। यह 'पशुत्व' गायों के सिवाय अश्वादि पशुओं में भी पाया जाता है इसलिये 'पशुत्व' अतिव्याप्त है।

जिसकी लक्ष्य में वृत्ति बाधित हो अर्थात् जो लक्ष्य में बिल्कुल ही नहीं रहता है वह असम्भवि लक्षणाभास है। जैसे मनुष्य का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लक्षण सींग। सींग किसी भी मनुष्य में नहीं पाया जाता, अतः वह असम्भवि लक्षणाभास है।

यहाँ लक्ष्य के एकदेश में रहने के कारण 'शावलेयत्व' अव्याप्त है, फिर भी उसमें असाधारण धर्मत्व रहता है 'शावलेयत्व' गाय के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं रहता—गाय में ही पाया जाता है। परन्तु वह लक्ष्यभूत समस्त गायों का व्यावर्त्तक--अश्वादि से जुदा करने वाला नहीं है—कुछ ही गायों को व्यावृत्त कराता है। इसलिये अलक्ष्यभूत अव्याप्त लक्षणाभास में असाधारण धर्म के रहने के कारण अतिव्याप्त भी है।

इस तरह असाधारण धर्म को लक्षण कहने में असम्भव, अव्याप्ति और अतिव्याप्ति ये तीनों ही दोष आते हैं। अतः 'मिली हुई अनेक वस्तुओं में से किसी एक वस्तु के अलग कराने वाले हेतु को लक्षण कहते हैं' यही लक्षण ठीक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रज्ञान के प्रामाण्य का निर्णय

प्रामाण्य का निश्चय—अभ्यस्त विषय में तो स्वतः होता है और अनभ्यस्त विषय में पर से होता है। तात्पर्य यह है कि प्रामाण्य की उत्पत्ति तो सर्वत्र पर से ही होती है, किन्तु प्रामाण्य का निश्चय परिचित विषय में स्वतः और अपरिचित विषय में परतः होता है। परिचित—कई बार जाने हुये अपने गाँव के तालाब का जल वगैरह अभ्यस्त विषय हैं और अपरिच्चित—नहीं जाने हुये दूसरे गाँव के तालाब का जल वगैरह अनभ्यस्त विषय हैं। ज्ञान का निश्चय कराने वाले कारणों के द्वारा ही प्रामाण्य का निश्चय होना 'स्वतः' है और उससे भिन्न कारणों से होना 'परतः' है।

उनमें से अभ्यस्त विषय में 'जल है' इस प्रकार ज्ञान होने पर ज्ञानस्वरूप के निश्चय के समय में ही ज्ञानगत प्रमाणता का भी निश्चय अवश्य हो जाता है। नहीं तो दूसरे ही क्षण में जल में सन्देहरहित प्रवृत्ति नहीं होती, किन्तु जलज्ञान के बाद ही सन्देहरहित प्रवृत्ति अवश्य होती है। अतः अभ्यासदशा में तो प्रामाण्य का निश्चय स्वतः ही होता है।

पर अनभ्यास दशा में जलज्ञान होने पर 'जलज्ञान मुझे हुआ' इस प्रकार से ज्ञान के स्वरूप का निश्चय हो जाने पर भी उसके प्रामाण्य का निश्चय अन्य (अर्थक्रियाज्ञान अथवा संवादज्ञान) से ही होता है। यदि प्रामाण्य का निश्चय अन्य से न हो—स्वतः हो तो जलज्ञान के बाद सन्देह नहीं होना चाहिये। पर सन्देह अवश्य होता है कि 'मुझ को जो जल का ज्ञान हुआ है वह जल है या बालू का ढेर? इस सन्देह के बाद ही कमलों की गन्ध, ठण्डी हवा के आने आदि से जिज्ञासु पुरुष निश्चय करता है कि 'मुझे जो पहले जल का ज्ञान हुआ है वह प्रमाण है—सच्चा है, क्योंकि जल के बिना कमल की गन्ध आदि नहीं आ सकती है।' अतः निश्चय हुआ कि अपरिच्चित दशा में प्रामाण्य का निर्णय पर से ही होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यौगाभिमत सन्निकर्ष के प्रत्यक्षता का निराकरण

नैयायिक और वैशेषिक सन्निकर्ष (इन्द्रिय और पदार्थ का संबंध) को प्रत्यक्ष मानते हैं। पर वह ठीक नहीं है; क्योंकि सन्निकर्ष अचेतन है, वह प्रमिति के प्रति करण कैसे हो सकता है ? प्रमिति के प्रति जब करण नहीं, तब प्रमाण कैसे ? और जब प्रमाण ही नहीं, तो प्रत्यक्ष कैसे ?

दूसरी बात यह है, कि चक्षु इन्द्रिय 'रूप का' ज्ञान सन्निकर्ष के बिना ही कराता है, क्योंकि वह अप्राप्यकारी है। इसलिये सन्निकर्ष के अभाव में भी प्रत्यक्षज्ञान होने से प्रत्यक्ष में सन्निकर्षरूपता ही नहीं है। चक्षु इन्द्रिय को जो यहाँ अप्राप्यकारी कहा गया है वह असिद्ध नहीं है। कारण, प्रत्यक्ष से चक्षु इन्द्रिय में अप्राप्यकारिता ही प्रतीत होती है।

शंका— यद्यपि चक्षु इन्द्रिय की प्राप्यकारिता (पदार्थ को प्राप्त करके प्रकाशित करना) प्रत्यक्ष से मालूम नहीं होती तथापि उसे परिमाणु की तरह अनुमान से सिद्ध करेंगे। जिस प्रकार परमाणु प्रत्यक्ष से सिद्ध न होने पर भी 'परमाणु है क्योंकि स्कन्धादि कार्य अन्यथा नहीं हो सकते' इस अनुमान से उसकी सिद्धि होती है उसी प्रकार 'चक्षु इन्द्रिय पदार्थ को प्राप्त करके प्रकाश करने वाली है, क्योंकि वह बहिरिन्द्रिय है (बाहर से देखी जाने वाली इन्द्रिय है) जो बहिरिन्द्रिय है वह पदार्थ को प्राप्त करके ही प्रकाश करती है, जैसे स्पर्शन इन्द्रिय' इस अनुमान से चक्षु में प्राप्यकारिता की सिद्धि होती है और प्राप्यकारिता ही सन्निकर्ष है। अतः चक्षु इन्द्रिय में सन्निकर्ष की अव्याप्ति नहीं है। अर्थात् चक्षु इन्द्रिय भी सन्निकर्ष के होने पर ही रूपज्ञान कराती है। इसलिए सन्निकर्ष को प्रत्यक्ष मानने में कोई दोष नहीं है ?

समाधान—नहीं; यह अनुमान सम्यक् अनुमान नहीं है—अनुमानाभास है। वह इस प्रकार से है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस अनुमान में 'चक्षु' पद से कौनसी चक्षु को पक्ष बनाया है ? लौकिक (गोलकरूप) चक्षु को अथवा अलौकिक (किरणरूप) चक्षु को? पहले विकल्प में, हेतु कालात्यापदिष्ट (बाधितविषय नाम का हेत्वाभास) है; क्योंकि गोलकरूप लौकिक चक्षु विषय के पास जाती हुई किसी को भी प्रतीत न होने से उसकी विषयप्राप्ति प्रत्यक्ष से बाधित है।

दूसरे विकल्प में, हेतु आश्रयासिद्ध है; क्योंकि किरणरूप अलौकिक चक्षु अभी तक सिद्ध नहीं है। दूसरी बात यह है, कि वृक्ष की शाखा और चन्द्रमा का एक ही काल में ग्रहण होने से चक्षु अप्राप्यकारी ही प्रसिद्ध होती है। अतः उपर्युक्त अनुमानगत हेतु कालात्यापदिष्ट और आश्रयासिद्ध होने के साथ ही प्रकरणसम (सत्प्रतिपक्ष) भी है। इस प्रकार सन्निकर्ष के बिना भी चक्षु के द्वारा रूपज्ञान होता है। इसलिये सन्निकर्ष अव्याप्त होने से प्रत्यक्ष का स्वरूप नहीं है; यह बात सिद्ध हो गई।

शंका—समाधानपूर्वक सर्वज्ञ की सिद्धि

शंका—सर्वज्ञता ही जब अप्रसिद्ध है तब आप यह कैसे कहते हैं कि 'अरिहन्त भगवान् सर्वज्ञ हैं' ? क्योंकि जो सामान्यतया कहीं भी प्रसिद्ध नहीं है उसका किसी खास जगह में व्यवस्थापन नहीं हो सकता है ?

समाधान—नहीं; सर्वज्ञता अनुमान से सिद्ध है। वह अनुमान इस प्रकार है सूक्ष्म, अन्तरित और दूरवर्ती पदार्थ किसी के प्रत्यक्ष हैं, क्योंकि वे अनुमान से जाने जाते हैं। जैसे अग्नि आदि पदार्थ। स्वामी समन्तभद्र ने भी महाभाष्य के प्रारम्भ में आप्तमीमांसाप्रकरण में कहा है—"सूक्ष्म, अन्तरित और दूरवर्ती पदार्थ किसी के प्रत्यक्ष हैं, क्योंकि वे अनुमान से जाने जाते हैं ? जैसे अग्नि आदि। इस अनुमान से सर्वज्ञ भले प्रकार सिद्ध होता है।"

सूक्ष्म पदार्थ वे हैं जो स्वभाव से विप्रकृष्ट है—दूर हैं, जैसे परमाणु आदि। अन्तरित वे हैं जो काल से विप्रकृष्ट हैं, जैसे राम आदि। दूर वे हैं जो देश से विप्रकृष्ट हैं, जैसे मेरु आदि।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये 'स्वभाव, काल और देश से विप्रकृष्ट पदार्थ' यहाँ धर्मी (पक्ष) है। 'किसी के प्रत्यक्ष हैं' यह साध्य है। यहाँ 'प्रत्यक्ष' शब्द का अर्थ 'प्रत्यक्षज्ञान के विषय' यह विवक्षित है, क्योंकि विषयी (ज्ञान) के धर्म (जानना) का विषय में भी उपचार होता है। 'अनुमान से जाने जाते हैं' यह हेतु है। 'अग्नि आदि' दृष्टान्त हैं। 'अग्नि आदि' दृष्टान्त में 'अनुमान से जाने जाते हैं' यह हेतु 'किसी के प्रत्यक्ष हैं' इस साध्य के साथ पाया जाता है। अतः वह परमाणु वगैरह सूक्ष्मादि पदार्थों में भी किसी की प्रत्यक्षता को अवश्य सिद्ध करता है।

तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार अग्नि आदि अनुमान से जाने जाते हैं। अतएव वे किसी के प्रत्यक्ष भी होते हैं उसी प्रकार सूक्ष्मादि अतीन्द्रिय पदार्थ चूंकि हम लोगों के द्वारा अनुमान से जाने जाते हैं। अतएव वे किसी के प्रत्यक्ष भी हैं और जिसके प्रत्यक्ष हैं वही सर्वज्ञ है। परमाणु आदि में 'अनुमान से जाने जाते हैं' यह हेतु असिद्ध भी नहीं है क्योंकि उनको अनुमान से जानने में किसी को विवाद नहीं है। अर्थात्—सभी मत वाले इन पदार्थों को अनुमेय मानते हैं।

शंका—सूक्ष्मादि पदार्थों को प्रत्यक्ष सिद्ध करने के द्वारा किसी के सम्पूर्ण पदार्थों का प्रत्यक्ष ज्ञान हो, यह हम मान सकते हैं। परन्तु वह अतीन्द्रिय है—इन्द्रियों की अपेक्षा नहीं रखता है, यह कैसे?

समाधान—इस प्रकार—यदि ज्ञान इन्द्रियजन्य हो तो सम्पूर्ण पदार्थों को जानने वाला नहीं हो सकता है; क्योंकि इन्द्रियाँ अपने योग्य विषय (सन्निहित और वर्तमान अर्थ) में ही ज्ञान को उत्पन्न कर सकती हैं। और सूक्ष्मादि पदार्थ इन्द्रियों के योग्य विषय नहीं हैं। अतः वह सम्पूर्ण पदार्थविषयिक ज्ञान अतीन्द्रिय ही है—इन्द्रियों की अपेक्षा से रहित अतीन्द्रिय है, यह बात सिद्ध हो जाती है। इसप्रकार से सर्वज्ञ को मानने में किसी भी सर्वज्ञवादी को विवाद नहीं है। जैसा कि दूसरे भी कहते हैं—'पुण्य-पापादिक किसी के प्रत्यक्ष हैं; क्योंकि वे प्रमेय हैं।'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सामान्य से सर्वज्ञ को सिद्ध करके अरिहन्त के सर्वज्ञता की सिद्धि—

शंका—सम्पूर्ण पदार्थों को साक्षात् करने वाला अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान सामान्यतया सिद्ध हो; परन्तु वह अरिहन्त के है यह कैसे? क्योंकि 'किसी के' यह सर्वनाम शब्द है और सर्वनाम शब्द सामान्य का ज्ञापक होता है ?

समाधान—सत्य है। इस अनुमान से सामान्य सर्वज्ञ की सिद्धि है। 'अरिहन्त सर्वज्ञ हैं।' यह हम अन्य अनुमान से सिद्ध करते हैं। वह अनुमान इस प्रकार है—अरिहन्त सर्वज्ञ होने के योग्य हैं, क्योंकि वे निर्दोष हैं, जो सर्वज्ञ नहीं है वह निर्दोष नहीं हैं, जैसे रथ्यापुरुष (पागल)।' यह केवलव्यतिरेकिहेतुजन्य अनुमान है।

आवरण और रागादि ये दोष हैं और इनसे रहितता का नाम निर्दोषता है। वह निर्दोषता सर्वज्ञता के बिना नहीं हो सकती है। क्योंकि जो किञ्चिज्ज्ञ है—अल्पज्ञानी है उसके आवरणादि दोषों का अभाव नहीं है। अतः अरिहन्त में रहने वाली यह निर्दोषता उनमें सर्वज्ञता को अवश्य सिद्ध करती है। और यह निर्दोषता अरिहन्त परमेष्ठी में उनके युक्ति और शास्त्र से अविरोधी वचन होने से सिद्ध होती है। युक्ति और शास्त्र से अविरोधी वचन भी उनके द्वारा माने गये मुक्ति, संसार और मुक्ति तथा संसार के कारण तत्त्व और अनेक धर्मयुक्त चेतन तथा अचेतन तत्त्व प्रत्यक्षादि प्रमाण से बाधित न होने से अच्छी तरह सिद्ध होते हैं। तात्पर्य यह है कि अरिहन्त के द्वारा उपदिष्ट तत्त्वों में प्रत्यक्षादि प्रमाणों से कोई बाधा नहीं आती है। अतः वे यथार्थ वक्ता हैं। और यथार्थवक्ता होने से निर्दोष हैं। तथा निर्दोष होने से सर्वज्ञ हैं।

शंका—इस प्रकार अरिहन्त के सर्वज्ञता सिद्ध हो जाने पर भी वह अरिहन्त के ही है, यह कैसे ? क्योंकि कपिल आदि के भी वह सम्भव है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाधान— कपिल आदि सर्वज्ञ नहीं हैं; क्योंकि वे सदोष हैं। और सदोष इसलिये हैं कि वे युक्ति और शास्त्र से विरोधी कथन करने वाले हैं। युक्ति और शास्त्र से विरोधी कथन करने वाले भी इस कारण हैं कि उनके द्वारा माने गये मुक्ति आदिक तत्त्व और सर्वथा एकान्त तत्त्व प्रमाण से बाधित हैं। अतः वे सर्वज्ञ नहीं है। अरिहन्त ही सर्वज्ञ है। स्वामी समन्तभद्र ने भी कहा है— "हे अर्हन्! वह सर्वज्ञ आप ही हैं, क्योंकि आप निर्दोष हैं। निर्दोष इसलिये हैं कि युक्ति और आगम से आपके वचन अविरुद्ध हैं– युक्ति तथा आगम से उनमें कोई विरोध नहीं आता। और वचनों में विरोध इस कारण नहीं है कि आपका इष्ट (मुक्ति आदि तत्त्व) प्रमाण से बाधित नहीं है। किन्तु तुम्हारे अनेकान्त मतरूप अमृत का पान नहीं करने वाले तथा सर्वथा एकान्त तत्त्व का कथन करने वाले और अपने को आप्त समझने के अभिमान से दग्ध हुए एकान्तवादियों का इष्ट (अभिमत तत्त्व) प्रत्यक्ष से बाधित है।" इसलिये अरिहन्त ही सर्वज्ञ हैं।

✽

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगमप्रमाण का लक्षण–

आप्त के वचनों से होने वाले अर्थज्ञान को आगम कहते हैं। यहां 'आगम' यह लक्ष्य है और शेष उसका लक्षण है। 'अर्थज्ञान को आगम कहते हैं' इतना ही यदि आगम का लक्षण कहा जाय तो प्रत्यक्षादिक में अतिव्याप्ति है, क्योंकि प्रत्यक्षादिक भी अर्थज्ञान हैं। इसलिये 'वचनों से होने वाले' यह पद–विशेषण दिया है। वचनों से होने वाले अर्थज्ञान को' आगम का लक्षण कहने में भी स्वेच्छापूर्वक (जिस किसी के) कहे हुये भ्रमजनक वचनों से होने वाले अथवा सोये हुये पुरुष के और पागल आदि के वाक्यों से होने वाले 'नदी के किनारे फल हैं' इत्यादि ज्ञानों में अतिव्याप्ति है, इसलिये 'आप्त' यह विशेषण दिया है। 'आप्त के वचनों से होने वाले ज्ञान को' आगम का लक्षण कहने में भी आप्त के वाक्यों को सुनकर जो श्रावण प्रत्यक्ष होता है उसमें लक्षण अतिव्याप्त है, अतः 'अर्थ' यह पद दिया है। 'अर्थपद तात्पर्य में रूढ़ है। अर्थात्–प्रयोजनार्थक है क्योंकि 'अर्थ ही–तात्पर्य ही वचनों में है' ऐसा आचार्यवचन है। मतलब यहहै कि यहां अर्थ पद का अर्थ तात्पर्य विवक्षित है,क्योंकि वचनों में तात्पर्य ही होता है। इस तरह आप्त के वचनों से होने वाले अर्थ (तात्पर्य) ज्ञान को जो आगम का लक्षण कहा गया है वह पूर्ण निर्दोष है। जैसे— "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः" [त. सू. १–१] 'सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों की एकता (सहभाव) मोक्ष का मार्ग है' इत्यादि वाक्यार्थज्ञान। सम्यग्दर्शनादिक सम्पूर्ण कर्मों के क्षयरूप मोक्ष का मार्ग अर्थात् उपाय है–न कि 'मार्ग हैं'। अतएव भिन्न भिन्न लक्षण वाले सम्यग्दर्शनादि तीनों मिलकर ही मोक्ष का मार्ग हैं, एक एक नहीं, ऐसा अर्थ 'मार्गः' इस एकवचन के प्रयोग के तात्पर्य से सिद्ध होता है। यही उक्त वाक्य का अर्थ है। और इसी अर्थ में प्रमाण से संशयादिक की निवृत्ति रूप प्रमिति होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रमाणवचन के सप्तभंग

सत्त्व और असत्त्व इन दो धर्मों में से सत्त्वमुखेन वस्तु का प्रतिपादन करना प्रमाणवचन का पहला रूप है। असत्त्वमुखेन वस्तु का प्रतिपादन करना प्रमाणवचनका दूसरा रूप है। सत्त्व व असत्त्व उभयधर्ममुखेन क्रमशः वस्तु का प्रतिपादन करना प्रमाणवचन का तीसरा रूप है। सत्त्व और असत्त्व उभयधर्ममुखेन युगपत् (एकसाथ) वस्तुका प्रतिपादन करना असम्भव है, इसलिये अवक्तव्य नाम का चौथारूप प्रमाणवचनका निष्पन्न होता है। उभयधर्ममुखेन युगपत् वस्तु के प्रतिपादन की असम्भवता के साथ–साथ सत्त्वमुखेन वस्तु का प्रतिपादन हो सकता है इस तरह से प्रमाणवचन का पाँचवाँ रूप निष्पन्न होता है। इसीप्रकार उभयधर्ममुखेन युगपत् वस्तु के प्रतिपादन की असम्भवता के साथ–साथ असत्त्वमुखेन भी वस्तु का प्रतिपादन हो सकता है इस तरह से प्रमाण–वचन का छठा रूप बन जाता है। और उभयधर्ममुखेन युगपत् वस्तु के प्रतिपादन की असम्भवता के साथ–साथ उभयधर्ममुखेन क्रमशः वस्तुका प्रतिपादन हो सकता है इस तरह से प्रमाणवचन का सातवाँ रूप बन जाता है। जैनदर्शन में इसको 'प्रमाणसप्तभंगी' नाम दिया गया है।

नयवचन के सप्तभंग

वस्तु के सत्त्व और असत्त्व इन दो धर्मों में से सत्त्वधर्म का प्रतिपादन करना नयवचन का पहला रूप है। असत्त्व धर्म का प्रतिपादन करना नयवचन का दूसरा रूप है। उभय धर्मों का क्रमशः प्रतिपादन करना नयवचन का तीसरा रूप है। और चूंकि उभयधर्मों का युगपत्

सप्तभंग के नाम-स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्तिनास्ति, स्यादवक्तव्य, स्यादस्त्यवक्तव्य, स्यान्नास्त्यवक्तव्य, स्यादस्तिनास्त्यवक्तव्य।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिपादन करना असम्भव है अतः इस तरह से अवक्तव्य नाम का चौथा रूप नयवचन का निष्पन्न होता है। नयवचन के पाँचवें, छटे और सातवें रूपों को प्रमाणवचन के पांचवें, छठें और सातवें रूपों के समान समझ लेना चाहिये। जैनदर्शनमें नयवचन के इन सातरूपों को, नयसप्तभंगी नाम दिया गया है।

इन दोनों प्रकार की सप्तभंगियों में इतना ध्यान रखने की जरूरत है कि जब सत्त्व-धर्ममुखेन वस्तु के सत्त्वधर्म का प्रतिपादन किया जाता है तो उस समय वस्तु की असत्त्वधर्मविशिष्टता को अथवा वस्तु के असत्त्वधर्म को अविवक्षित मान लिया जाता है और यही बात असत्त्व-धर्ममुखेन वस्तु का अथवा वस्तु के असत्त्वधर्म का प्रतिपादन करते समय वस्तु की सत्त्वधर्मविशिष्टता अथवा वस्तु के सत्त्वधर्म के बारे में समझना चाहिये। इस प्रकार उभयधर्मों की विवक्षा (मुख्यता) और अविवक्षा (गौणता) के स्पष्टीकरण के लिये स्याद्वाद अर्थात् स्यात् की मान्यता को भी जैनदर्शन में स्थान दिया है।

स्याद्वाद का अर्थ है—किसी भी धर्म के द्वारा वस्तु का अथवा वस्तु के किसी भी धर्म का प्रतिपादन करते वक्त उसके अनुकूल किसी भी निमित्त, किसी भी दृष्टिकोण या किसी भी उद्देश्य को लक्ष्य में रखना और इस तरह से ही वस्तु की विरुद्धधर्मविशिष्टता अथवा वस्तु में विरुद्ध धर्म का अस्तित्व अक्षुण्ण रक्खा जा सकता है। यदि उक्त प्रकार के स्याद्वाद को नहीं अपनाया जायगा तो वस्तु की विरुद्धधर्मविशिष्टता का अथवा वस्तु में विरोधी धर्म का अभाव मानना अनिवार्य हो जायगा और इस तरह से अनेकान्तवाद का भी जीवन समाप्त हो जायगा।

इस प्रकार अनेकान्तवाद, प्रमाणवाद, नयवाद, सप्तभंगी और स्याद्वाद ये जैनदर्शन के अनूठे सिद्धान्त हैं। इनमें से एक प्रमाणवाद को छोड़ कर बाकी के चार सिद्धान्तों को तो जैनदर्शन की अपनी ही निधि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्याद्वादात्मकसप्तभंगात्मकानेकान्तवादसिद्धिः

परस्परविरुद्धधर्माणां समानाधिकरणस्यासंभाव्यमानत्वेन कथं प्रमाणप्रतिपन्नार्थानां तदात्मकत्वं, प्रतीतिविरोधात्, एकांतस्वरूपोपलब्धेश्च इति चेन्न पदार्थानामनेकान्तात्मकत्वस्य अनुमानादिप्रमाणप्रतिपन्नत्वेन सर्वथैकान्तस्वरूपानुपलब्धेः । तथा चानुमानम् नास्ति वस्तुनि सर्वथैकान्तत्वम्, अनेकांतात्मकत्वान्यथानुपपत्तेः । ननु किमिदमनेकान्तात्मकत्वं, यद्बलाद्वस्तुनि सर्वथैकान्ताभावः साध्यते इति चेदुच्यते । सर्वस्मिन्नपि जीवादिवस्तुनि भावाभावरूपत्वं एकानेकरूपत्वं नित्यानित्यरूपत्वमित्येवमादिकमनेकांतात्मकत्वम् ।

तत्साधकानुमानप्रयोगः—सर्वमनेकांतात्मकत्वं सत्त्वात् । यन्नानेकांतात्मकं तन्न सत् यथा गगनारविंदमिति । ननु यद्यपि अरविन्दं गगने नास्त्येव तथापि सरस्यस्तीति, ततो न सत्त्वहेतुव्यावृत्तिः इति चेत्तर्हि तदेतदरविंदाधिकरणविशेषापक्षया सदसदात्मकनेकान्तमिति अन्वयदृष्टान्तत्वं भवतैव प्रतिपादितमिति सन्तोष्टव्यमायुष्मता । ततो नयानां मुख्यस्वगौणत्वविवक्षाभ्यां निखिलवस्तुनि अनेकधर्मसामानाधिकरण्यमविरुद्धं सत् सिद्धिमध्यास्ते एव । "नयांतरविषयसदपेक्षाः सन्नयाः" इत्यभिधानात् ।

सप्तभंगी यथा सुवर्णमानयेत्युक्ते सति द्रव्यार्थिकनयाभिप्रायेण स्वर्णद्रव्यानयनचोदनायां कटकं कुण्डलं केयूरं चोपनयन्नुपनेता कृती भवति, स्वर्णरूपेण कटकादीनां भेदाभावात् । द्रव्यार्थिकनयमुपसर्जनीकृत्य प्रवर्तमानं पर्यायार्थिकनयमवलम्ब्य कुण्डलमानयेत्युक्ते न कटकादौ प्रवर्तते, कटकादिपर्यायस्य ततो भिन्नत्वात् । ततो द्रव्यार्थिकनयाभिप्रायेण स्वर्णं स्यादे-

---

कहा जा सकता है और ये चारों सिद्धान्त जैनदर्शन की अपूर्वता एवं महत्ता के अतीव परिचायक हैं ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कमेव, पर्यायार्थिकनयाभिप्रायेण स्यादनेकमेव, क्रमेणोभयनयाभिप्रायेण स्यादेकानेकं, युगपदुभयनयाभिप्रायेण स्यादवक्तव्यं। युगपत्प्राप्तेन नयद्वयेन विविक्तस्वरूपयोरेकत्वानेकत्वयोः विमर्शाभावात् युगपदुभयनयाभिप्रायेण द्रव्यार्थिकनयाभिप्रायेन च स्यादेकावक्तव्यं, युगपदुभयनयाभिप्रायेण पर्यायार्थिकनयाभिप्रायेण च स्यादनेकावक्तव्यं, क्रमेणोभयनयाभिप्रायेण युगपदुभयनयाभिप्रायेण च स्यादेकानेकावक्तव्यम्। सैषा नयविनियोगपरिपाटी सप्तभंगीत्युच्यते। भंगशब्दस्य वस्तुस्वरूपभेदवाचकत्वात्। सप्तानां भंगानां समाहारः सप्तभंगीति सिद्धेः

नन्वेकत्र वस्तुनि सप्तानां भङ्गानां कथं संभव इति चेत्—यथैकस्मिन् घटे रूपवान् घटः, रसवान् गन्धवान् स्पर्शवानिति पृथक् व्यपहारनिबंधना रूपत्वादिस्वरूपभेदाः सम्भवन्ति, तथैकस्मिन् वस्तुनि स्वस्वरूपावस्थितानां सप्तभङ्गानां सम्भवं ज्ञात्वा संतोष्टव्यमायुष्मता। तदुक्तं च श्रीमत्स्वामिसमन्तभद्राचार्यवर्यैः "अनेकांतोप्यनेकांतः प्रमाणनयसाधनः। अनेकान्तः "प्रमाणात्ते तदेकांतोर्पिताश्नयात्" ॥१॥ मिथ्यासमूहो मिथ्या चेन्न मिथ्यैकान्ततास्ति नः। निरपेक्षा नयाः मिथ्या, सापेक्षा वस्तुतोऽर्थकृत्। इत्यनेकांतसिद्धिः।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'असाधारणधर्मवचनं लक्षणम्'

ननु असाधारणधर्मवचनं लक्षणं कथं न समीचीनमिति चेत्उच्यते; तदेव हि सम्यक् लक्षणं यदव्याप्त्यादिदोषत्रयशून्यम् । न चात्र लक्षणेऽव्याप्त्यादिदोषत्रयाभावः । तथा हि— अशेषैरपि वादिभि र्दण्डी, कुण्डली, वासस्वी देवदत्त इत्यादौ दण्डादिकं देवदत्तस्य लक्षणमुररीक्रियते, परं दण्डादेरसाधारणधर्मत्वं नास्ति, तस्य पृथग्भूतस्यापृथग्भूतत्वासम्भवात् । अपृथग्भूतस्य चासाधारणधर्मत्वमिति तवाभिप्रायः । तथा च लक्ष्यैकदेशेऽनात्मभूतलक्षणे दण्डादौ असाधारणधर्मत्वस्याभावादव्याप्तिरित्येव तात्पर्यमाश्रित्योक्तं ग्रन्थकृता "दण्डादेरतद्धर्मस्यापि लक्षणत्वादिति" ।

किञ्चाव्याप्ताभिधानस्य लक्षणाभासस्यापि शावलेयत्वादेरसाधारणधर्मत्वादतिव्याप्तिः । गोः शावलेयत्वं,जीवस्य भव्यत्वं मतिज्ञानित्वं वा न गवादीनां लक्षणमिति सुप्रतीतम्, शावलेयत्वस्य सर्वत्र गोष्ववृत्तेः । भव्यत्वस्य मतिज्ञानित्वस्य वा सर्वजीवेष्ववर्त्तमानत्वादव्याप्तेः । परन्तु शावलेयत्वस्य भव्यत्वादे र्वाऽसाधारणधर्मत्वमस्ति । यतो हि तेषां गवादिभ्यो भिन्नेष्ववृत्तित्वात् । तदितरावृत्तित्वं ह्यसाधारणत्वमिति । ततः शावलेयत्वादावव्याप्ताभिधाने लक्षणाभासे असाधारणधर्मस्यातिव्याप्तिरिति बोध्यम् ।

अपि च लक्ष्यधर्मिवचनस्य लक्षणधर्मवचनेन सामानाधिकरण्याभावप्रसंगात् । तथा हि— सामानाधिकरण्यं द्विविधम्—शाब्दमार्थं च । ययोर्द्वयोरेकत्र वृत्तिस्तयोरार्थसामानाधिकरण्यम्, यथा रूपरसयोः । ययोर्द्वयोः शब्दयोरर्थैकः प्रतिपाद्योऽर्थस्तयोः शाब्दसामानाधिकरण्यम्, यथा घटकलशशब्दयोः । सर्वत्र हि लक्ष्यलक्षणभावस्थले लक्ष्यवचनलक्षणवचनयोः शाब्दसामानाधिकरण्यं भवति ताभ्यां प्रतिपाद्यस्यार्थस्यैकत्वात् । यथा उष्णोऽग्निः, ज्ञानी जीवः, सम्यग्ज्ञानं प्रमाणम्, इत्यादौ उष्णः, ज्ञानी,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्ज्ञानम्, एतानि लक्षणवचनानि । अग्निः, जीवः, प्रमाणम्, एतानि च लक्ष्यवचनानि । अत्र लक्षणवचनप्रतिपाद्यो योऽर्थः स एव लक्ष्यवचनप्रतिपाद्यो, न भिन्नोऽर्थस्तत्प्रतिपाद्यः । एवं लक्ष्यवचनप्रतिपाद्यो योऽर्थः स एव लक्षणवचनप्रतिपाद्यो न भिन्नः । यतो हि उष्ण इत्युक्ते अग्निरित्युक्तं भवति, अग्निरित्युक्ते उष्ण इत्युक्तं भवति इत्यादि बोध्यम् । ततश्चेदं सिद्धं यत्र कुत्राऽपि लक्ष्यलक्षणभावः क्रियेत तत्र सर्वत्रापि लक्षणवचनलक्ष्यवचनयोः शाब्दसामानाधिकरण्यम् । इत्थं च प्रकृते असाधारणधर्मस्य लक्षणत्वस्वीकारे लक्षणवचनं धर्मवचनं, लक्ष्यवचनं च धर्मिवचनं, स्यात् । न च लक्षणवचनरूपधर्मवचनलक्ष्यवचनरूपधर्मिवचनयोः शाब्दसमानाधिकरण्यमस्ति ताभ्यां प्रतिपाद्यार्थस्य भिन्नत्वात् । धर्मवचनप्रतिपाद्यो हि धर्मः, धर्मिवचनप्रतिपाद्यश्च धर्मी, तौ च परस्परं सर्वथा भिन्नौ । तथा चासाधारणधर्मस्य लक्षणत्वे न कुत्रापि लक्ष्यलक्षणभावस्थले लक्ष्यवचनलक्षणवचनयोः शाब्दसमानाधिकरण्यं सम्भवति । ततश्च शाब्दसमानाधिकरण्याभावप्रयुक्तासम्भवदोषः समापतत्येव । तस्मान्न साधारणासाधारणधर्ममुखेन लक्षणकरणं यौक्तिकमपि तु परस्परव्यतिकरे येनान्यत्वं लक्ष्यते तल्लक्षणमित्यकलंकम् ।

॥ समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi